

VISHVA-JYOTI

R. N. NO. 1/57

ISSN 0505-7523

REGD. NO. PB-HSP-01

CURRENCY PERIOD:

(1.1.2015 TO 31.12.2017)

६६, ६

सितम्बर-२०१७

विश्वज्योति



विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होशियारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री ओमप्रकाश बजाज	मुश्किल	कविता	२
श्री ताराचन्द आहूजा	वेदों में शिव-तत्त्व	लेख	३
डॉ. अरविन्द्र कौर	हिन्दी नवजागरण, दलित समस्या: मुंशी प्रेमचन्द	लेख	७
डॉ. सविता सचदेवा	श्री गुरु गोबिन्द सिंह: दार्शनिक भावना	लेख	१२
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	नवीन दिशा	लेख	१५
श्री राजेश शर्मा	काश्मीर शैवदर्शन में वसुगुप्त का योगदान	लेख	१६
डॉ. जयकृष्ण त्रिपाठी	योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप	लेख	२०
डॉ. सुनीला शर्मा	श्री गुरु गोबिन्द सिंह की भक्ति-भावना	लेख	२३
श्री राम शरण युयुत्सु	निष्काम-कर्मयोग	लेख	२८
सुश्री कीर्ति शर्मा	कला के परिप्रेक्ष्य में रस सिद्धान्त एवं रस संख्या विमर्श	लेख	३१
श्री जीवे कुमार	ज्योतिषशास्त्र के संदर्भ में ग्रह- नक्षत्र विचार	लेख	३९
	संस्थान-समाचार		४५
	विविध-समाचार		४६
	पुण्य-पृष्ठ		४७-४८

संस्थापक-सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप-सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक-मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होशियारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होशियारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	: १२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	: ३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	: १०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	: ३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	: १० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	: ३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	: २५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	: ६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होशियारपुर-146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606

सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुश्किल

—श्री ओमप्रकाश बजाज

सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा जी की एक कविता की अंतिम पंक्ति के शब्द हैं:

“इतना मुश्किल भी नहीं है जीना!”
कितना संतोष प्रदान करते हैं ये शब्द!
आज की तनाव भरी ज़िन्दगी में हम
रात दिन भागमभाग में लगे रहते हैं
घरेलू परेशानियां काम की उलझनें
सामाजिक दबाव आर्थिक जरूरतें आदि
हमें न दिन में चैन लेने देती हैं न रात को!
ईश्वर की बनाई इस सुंदर दुनिया की
एक से एक खूबसूरत कृतियों पर एक
नज़र भर डालने का समय भी हमारे पास नहीं है!
अपने घर की बगिया में खिले रंगबिरंगे फूलों
उन पर थिरकती इंद्रधनुष के रंगों वाली तितलियों
अपने बच्चे की मुस्कान पत्नि की प्यार भरी नज़र
कुछ भी तो हमें आकर्षित नहीं कर पाता!
हम यह भी भूल बैठते हैं कि चौरासी लाख
योनियों से गुज़रने के बाद हमें मनुष्य योनि मिली है!
सोच बदलिये क्योंकि “इतना मुश्किल भी नहीं है जीना!”

पोस्ट बाक्स ५९५, जी. पी. ओ., इंदौर (म. प्र.) ४५२००१

मो० ०९८२६४९६९७५

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६६ } होशियारपुर, भाद्रपद २०७४; सितम्बर २०१७ { संख्या ६

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
(यजु. ३४.२)

(इस मन के द्वारा ही)कर्मठ, मनीषी और (धीराः) सज्जन (विदथेषु यज्ञे)पूजा के अवसरों पर (पवित्र) (कर्माणि)कर्मों को (विस्तृत)(कृण्वन्ति)करते हैं । (यह मन) उत्पन्न हुए (प्रजानां)प्राणिवर्ग के (अन्तः)अन्दर अपूर्व और (यक्षं)गुह्य (तत्त्व के रूप में) विराज रहा है । (ऐसा जो)(मे)मेरा (मनः)मन (है) वह (शिवसंकल्पम्) अच्छे संकल्प वाला (अस्तु)हो ।

प्रेमचन्द जी इसी नवजागरण काल में पैदा हुए। हरिजनों के उद्धार, लड़कियों की शिक्षा की आवश्यकता, जाति-भेद, खान-पान में छूत-छात आदि पर सबसे पहले कदम आर्यसमाज ने उठाया जिनका प्रेमचन्द जी समर्थन करते हुए कहते हैं, 'अन्धविश्वास और धर्म के नाम पर किए जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसने खोदी, हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और सभी तक उसकी ज़हरीली गन्ध उड़-उड़ कर समाज को दूषित कर रही है। समाज की मानसिक और बौद्धिक धरातल को आर्यसमाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो।'^४ प्रेमचन्द की चेतना आर्यसमाज के कार्यों से प्रभावित हुए बिना न रह सकी और नवजागरण के स्वर से भर कर उन्होंने साहित्य के माध्यम से इसे सजाया और संवारा। कथादेश में प्रकाशित शम्भुनाथ जी के लेख 'प्रेमचन्द हिन्दी समाज और दलित प्रश्न' में अंकित विचारानुसार, 'हिन्दीसमाज में प्रेमचन्द और गांधी से पहले दलितों की समस्या का तीव्रता से अनुभव नहीं किया जा सका।'^५

प्रेमचन्द ने साहित्य-लेखन के आरम्भ से ही दलित-समस्या पर गूढ़ विचार अंकित किए, जिसमें साहित्य को नया मोड़ दिया।

प्रेमचन्द की दलित और दलित-स्त्री विषयों की कहानियों की बात करते हुए इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। आरम्भिक रचनाओं में आर्यसमाज का प्रभाव पूर्णतः लक्षित होता है, जिनमें १९११ में प्रकाशित कहानी 'दोनों तरफ से' तथा १९१३ में प्रकाशित 'सिर्फ एक आवाज़' एवं १९२४ में प्रकाशित कहानी 'सौभाग्य के कीड़े' प्रमुख हैं जिनमें सवर्ण पात्र वर्ण-व्यवस्था और छुआछूत का विरोध करते हुए अपनी जाति से ही विद्रोह करते दिखाई पड़ते हैं। १९२० के बाद इनकी लेखनी पर राष्ट्रीय राजनीति में गांधी जी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'मन्दिर' कहानी में गांधी जी के आन्दोलन, मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश का प्रभाव दिखाया गया है। तदुपरांत १९२६ तक आते-आते प्रेमचन्द जी के दलित पात्र मुखर होने लगते हैं। तीसरा चरण जिसमें प्रेमचन्द मार्क्सवाद के आलोक में वर्ण-व्यवस्था और ईश्वर पर प्रहार करते दीख पड़ते हैं जिसकी परिणति 'कफन' कहानी में दिखाई पड़ती है।

प्रेमचन्द ने वर्णव्यवस्था तथा छुआछूत पर जिस तरह से गम्भीरतापूर्वक अपनी पैनी दृष्टि डाली है, हिन्दी नवजागरण काल में वह अन्यत्र दुर्लभ है। १९१८ में प्रेमचन्द ने लिखा

४. साहित्य का उद्देश्य, पृ. १३४-१३५

५. कथादेश, जुलाई २००३, पृ. ३१

हिन्दी नवजागरण, दलित समस्या: मुंशी प्रेमचन्द

—डॉ. अरविन्द कौर

मुंशी प्रेमचन्द साहित्य-स्रष्टा के रूप में परिलक्षित होते हैं। प्रेमचन्द के अनुसार साहित्यकार के अन्दर की 'टीस अथवा पीड़ा का अस्तित्व ही उससे साहित्य की रचना करवाने में महत्वपूर्ण कारण होता है। वे यह स्वीकार करते हैं कि साहित्यकार प्रकृति की ही देन है। उनका कथन है, 'इसमें शक नहीं कि साहित्यकार पैदा होता है, बनाया नहीं जाता, पर यदि हम शिक्षा और जिज्ञासा से प्रकृति की इस देन को बढ़ा सकें, तो निश्चय ही हम साहित्य की सेवा कर सकेंगे।' उनकी दृष्टि में साहित्य 'जीवन की आलोचना है अर्थात् जीवन में घटित होने वाली सच्चाईयों का दर्पण है। उनका मानना है कि 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हों, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो,

जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।' इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं को साहित्य में उजागर किया और जीवन के सत्य को बाखूबी प्रकट भी किया। उन्होंने साहित्य और समाज के अटूट सम्बन्ध स्वीकार करते हुए कहा- 'साहित्य सामाजिक आदर्शों का स्रष्टा है। जब आदर्श ही भ्रष्ट हो गया तो समाज के पतन होने में बहुत दिन नहीं लगते।' वे आदर्श को सजीव बनाकर उसके यथार्थरूप में प्रस्तुतिकरण को उपयोगी स्वीकार करते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी भारत के सन्दर्भ में नवजागरण का काल है। देश के सामाजिक धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में इस नवजागरण ने प्रभावित किया।

१. कुछ विचार, पृ. १८

३. साहित्य का उद्देश्य, पृ. २७

२. वही, पृ. २३

गांधी को अछूतों के मन्दिर प्रवेश पर समर्थन दिया, पर एक सीमा तक ही। 'मन्दिर' कहानी १९२७ में छपी थी और १९३२ में अछूतों के मन्दिर प्रवेश पर प्रेमचन्द लिखते हैं- 'हिन्दू जाति उन्हें यह अधिकार देकर केवल अपना कलंक दूर करेगी.... असल समस्या तो आर्थिक है।' इसी तरह 'सद्गति' कहानी का दुखी पंडित के यहां बेगार करते हुए मर जाता है अथवा 'ठाकुर का कुंआ' गंगी ठाकुर के कुंआ से पानी नहीं भर पाती। ऐसी घटनाओं से सवर्णों के प्रति आक्रोश बढ़ता है। दरअसल इन पात्रों की हार युगीन दलित आन्दोलन का ही प्रतिबिम्ब है। 'मंत्र' कहानी के हिन्दू महासभा का सदस्य पंडित लीलाधर चौबे भीलों को सुधारने के लिए चलता है पर खुद सुधर कर उन्हीं के साथ रहने लगता है। वह कहता है, 'मैं भला इन्हें क्या सुधारूंगा, पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ।' 'कफन' कहानी में इस बात का आरोप लगाया जाता है कि प्रेमचन्द ने दलितों की एक जाति को काहिल, निकम्मा और संवेदनशील बनाया है। दरअसल इतिहास से कटकर निकल जाने की प्रवृत्ति के कारण ये बातें कही जाती हैं। दलित-चिन्तन का आधार ही अतीत की प्रताड़ना पर आधारित है। प्रेमचन्द जी 'कफन'

कहानी पर स्पष्ट विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- 'जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना चाहते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे। वहां इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई आश्चर्य की बात न थी।' इस प्रकार उनके पात्र यदि कहीं असफल दिखाई पड़ते हैं तो उससे सवर्णों की हेठी (जिद्दीपन) और दरिंदगी का पता चलता है। कई आलोचकों का मानना है कि इनके पात्र आस्तिक न होकर नास्तिक प्रवृत्ति की ओर अधिक दिखाई पड़ते हैं किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। क्योंकि यदि आज की बात करें तो कुछ-एक को छोड़कर सब आस्तिक हैं जिसका प्रमाण पश्चिम बंगाल की दुर्गापूजा है। अगर यह देखें कि दलित नास्तिक हैं तो बंगाल के सारे लोगों को नास्तिक होना चाहिए था जबकि उनकी दुर्गापूजा जो कि तीस वर्षों से होती चली आ रही है उसमें कहीं कोई कमी या नास्तिकता दृष्टिगोचर नहीं होती बल्कि आस्तिकता का ही पुट अधिक है। दूसरी एक और बात गुजरात में हुए दंगों में भी दलितों का सक्रियता जगजाहिर हो गई है, तो प्रेमचन्द पर यह आरोप लगाना केवल

कि, 'हमारे समाज में अभी ऊँच-नीच का विचार ज्यों का त्यों बना हुआ है। चमार अब भी अछूत हैं और डोम का स्पर्श करना तो हमारे लिए घोर पातक है। मनुष्य की आत्मा की श्रेष्ठता, उसका गौरव हम भूल चुके हैं।'^६ १९११ के मार्च में उर्दू पत्रिका 'जमाना' में प्रेमचन्द की कहानी, 'दोनों तरफ से' प्रकाशित हुई जिसमें आर्यसमाजी भाव गौणरूप में जागृत होते दिखाई पड़ते हैं। 'हंस' के सम्पादक राजेन्द्र यादव का कहना है कि दलित ही अपनी भावनाओं का उजागरण प्रामाणिकता के साथ कर सकते हैं किन्तु यदि ब्राह्मण, राजपूत अथवा यादव सवर्णों द्वारा दलित पर होने वाले अत्याचार और शोषण को लिखते हैं तो उस साहित्य को क्या कहा जाएगा? प्रेमचन्द एक ब्राह्मणजाति से सम्बन्धित हैं। इसलिए यह सही है कि दलित न होने के कारण वह 'भोगा हुआ यथार्थ' नहीं लिख सकते थे किन्तु 'दोनों तरफ से' कहानी इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि ब्राह्मणवाद के विरुद्ध कुछ सुवर्णों ने भी आवाज उठाई थी जिसमें लोगों को जागृत किया गया। वह इस बात से अच्छी तरह परिचित थे कि दलितों को इस अवस्था में रखने में महाजनी-सभ्यता की

मुख्य भूमिका रही है। 'दोनों तरफ से' कहानी के अन्त में वह दलित महिलाओं को श्याम सरूप से कहलाते हैं कि, 'इस खुशी में मैं एक-एक हजार रुपये से दस गांव में लेन-देन की कोठियां खोलूंगा और तुम लोगों को बिना सूद के रुपया दिया जाएगा। तुम लोगों को महाजनों से रुपया लेने में एक आना और दो आना रुपया सूद देना पड़ता है। इन कोठियों के खुलते ही तुम महाजनों के बन्धन से छूट जाओगे और इन कोठियों का इन्तजाम उन्हीं के सुपुर्द होगा, जिसने तुम्हें आज न्यौता दिया है।'^७ इस प्रकार अर्थव्यवस्था सामाजिक परिवर्तन की धुरी है। हिन्दीक्षेत्र में प्रेमचन्द से पूर्व ऐसा आन्दोलन नहीं हुआ था जिसमें दलितों के प्रश्न पर विचार किया गया हो इसलिए उनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जातिविहीन समाज की स्थापना करना ही प्रेमचन्द का मुख्य उद्देश्य था। वह अन्तर्जातीय विवाह को भी एक विकल्प के रूप में स्वीकार करते हैं। प्रेमचन्द अपनी कहानी 'सौभाग्य के कीड़े' (१९२४) में इसी विकल्प को जागृत करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आर्थिक दशा सुधरते ही जाति का बन्धन ढीला पड़ने लगता है। प्रेमचन्द ने

६. प्रेमचन्द, विविध प्रसंग, खण्ड दो, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. २१

७. श्रीधरम, स्त्री: संघर्ष और सृजन, पृ. ७४

श्री गुरु गोबिन्द सिंह: दार्शनिक भावना

—डॉ. सविता सचदेवा

सवा लाख से एक लड़ाऊं,
चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊं,
तबे गोबिन्द सिंह नाम कहाऊं ।।

यह पंक्तियां सिक्ख धर्म के दसवें गुरु श्री गोबिन्द सिंह जी को समझने के लिए पर्याप्त हैं। उनकी मान्यता थी कि मनुष्य को किसी को डराना नहीं चाहिए न किसी से डरना चाहिए। भै काहू को देत नहीं नहि भय मानत आन। उनके अनुसार परमात्मा सबका संरक्षक है पालक है अनेक प्रकार की शक्तियों का प्रदाता है। जन्मदाता है, कर्म दाता है—

जन्मदाता कर्मज्ञाता धर्मचरि विचार ।।
सर्वदाता सर्वज्ञाता सर्व को प्रतिपाल ।।

दशम ग्रन्थ २९

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी एक धर्मरक्षक योद्धा के अतिरिक्त दार्शनिक चिन्तक भी थे। उनका दर्शन अद्वैतवाद पर आधारित है। उन्होंने ईश्वर और आत्मा का एक ही रूप माना

है। उनकी रचना अकाल स्तुति में वह स्वयं कहते हैं। जिस प्रकार एक नदी से अनेक तरंगे उपजती हैं, परन्तु फिर पानी में मिल कर पानी में ही समा जाती हैं इसी प्रकार ईश्वर से जीव जन्म लेता है परन्तु अन्त में उसी में समा जाता है।^१

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने ईश्वर को अरूप, अखंड, अजन्मा सर्वव्यापी तथा सर्वशक्ति माना है। अर्थात् ईश्वर के प्रथम रूप को ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार ईश्वर सब का रक्षक संहार करने वाला तथा बचाने वाला है तथा कालातीत है—

अखंड चंड रूप है। प्रचंड सरब रूप है ।।
काल हूं के काल है। सदैव रछपाल है ।।^२

गुरु जी ने सर्वशक्तिमान् निराकार ब्रह्म के प्रति आस्था प्रकट कर ईश्वर एक है पर बल दिया है— एक ओंकार सतिगुर प्रसादि। कबीर ने भी ओंकार कौ ही आदि एवं मूल

१. . जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है।

पान कै तरंग सभै पान ही कहाहेंगे ।। दशमग्रन्थ पृ. ३

२. दशमग्रन्थ पृ. २२८

भावुकता ही है और उसमें यथार्थ बहुत कम।

‘घासवाली’ कहानी में दलित पात्र के विद्रोही स्वर को देखा जा सकता है और इस विद्रोह की आरम्भता स्त्रियों द्वारा होती है। मुलिया को जमींदार चैन सिंह के द्वारा फंसाए जाने पर मुलिया की निडरता और फटकार से ही वह आदमी बन जाता है। मुलिया चैन सिंह से निडरता से स्पष्ट रूप में कहती है, ‘अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इस तरह बातें करता तो तुम्हें कैसा लगता? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं।’ इस प्रकार इनके इलावा दूसरा कोई और लेखक नहीं हुआ है जिसने दलित और स्त्री-समस्या पर इतनी अधिक गंभीरता से सोचा-विचारा हो। यही कारण है कि दलित-साहित्य के इस हंगामे के दौर में भी ‘ठाकुर का कुंआ’ और ‘सद्गति’ जैसी कहानियों के वजन की यथार्थपरक कहानियों का अस्तित्व कम है। दलित समस्या के समाधान के लिए प्रेमचन्द का अपना माडल था। वह गांधी से प्रभावित होते हैं पर उनसे मोहभंग भी जल्दी हो जाता

है। दिसम्बर १९३२ के ‘हंस’ में उन्होंने लिखा कि, ‘हरिजनों की समस्या मन्दिर प्रवेश से हल होने वाली नहीं है। इस समस्या की आर्थिक बाधाएं धार्मिक बाधाओं से कठोर हैं।’ इस प्रकार हिन्दी नवजागरण पर अथवा दलित-विमर्श पर विचार करने के समय प्रेमचन्द जी के महत्त्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं जा सकता। वे एक ऐसे साहित्यकार हुए जिन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्य और साहित्यकार देशकाल से प्रभावित होता है। यह सम्भव नहीं है कि देश में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियां विकट हों और साहित्यकार उनकी ओर ध्यान न दे। वह समाज का पथ-प्रदर्शक है। वह मनुष्य में उसकी मनुष्यता को जागृत करता है, सद्भावों का संचार करता है और दृष्टि को फैलाता है। इनका साहित्य अछूतोद्धार को प्रमुख रूप से आर्थिक उद्धार तथा स्वराज्य से संयुक्त करके प्रस्तुत करता है। उनकी दृष्टि में दलित एवं शोषित वर्ग का स्वराज्य ही वास्तविक स्वराज्य था।

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, ए.एस. कालेज, खन्ना

की उस शक्ति मदान्ध मुगलसत्ता की ओर संकेत किया था जिसकी विशाल शक्ति के सम्मुख उस 'काल पुरुष' का भरोसा लेकर वे खड़े हुये थे-

या कलि में सभ काल कृपान के भारी भुजान को भारी भरोसो ।^{११}

काल को उन्होंने सर्वकाल, महाकाल, श्रीकाल आदि अनेक नामों से पुकारा है। काल के रूप में उन्होंने परमेश्वर के वीररूप और उग्ररूप की प्रतिष्ठा की है। डमरु बजाते, फणिधर के समान फुफकारते, बाघ के समान दहाड़ते हंसते, रक्त पीते, अष्टायुध को धारण किये। सिंह पर सवार इत्यादि भयावह रूप का चित्रण अनेक स्थानों पर हुआ।^{१२} उन्होंने परमात्मा को अकाल पुरुष एवं कर्ता-पुरुष, वाहेगुरु, निरंकार आदि नामों से पुकारा है।^{१३} गुरु गोबिन्द सिंह जी ने स्वयं कहा है कि ईश्वर तो वर्णनातीत है। उसके रूप का सभी प्रकार से वर्णन करके भी अन्त में उसे रूपातीत ही कहना पड़ेगा क्योंकि वही एक परमसत्ता जल और थल में विराजमान है और उसी की ज्योति १४

दिशाओं में प्रकाशित हो रही है।^{१४} इसीलिए वह संसार में दृष्टिगोचर होने वाली सभी वस्तुओं में समाया हुआ है। वह निराकार या रूपहीन होते हुए भी साकार और सरूपवान् है क्योंकि यह सृष्टि ही उसकी साकारता है और सृष्टि का रूप ही उसका अपना रूप है।

इस प्रकार गुरु जी ने अपने इष्ट देव के विविध रूपों का वर्णन किया है चाहे वह निराकार रूप हो या साकार रूप हो। या वह करुणाप्रधानरूप हो अथवा भयावह रूप हो। पर वह परमात्मा अखण्ड, अनन्त, अनेक रूप जन्म, मरण से रहित, निराकार रूप वेशरहित नित्य तथा एकरस है। जिसने अपनी कल्याण रूप शक्ति से चारों वेदों का निर्माण किया है जिसने दिन-रात के लिए सूर्य-चन्द्रमां जैसे दीपक बना दिये हैं।^{१५} और पांच तत्वों का प्रकाश करके जिसने सृष्टि की रचना की है। गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी समस्त दार्शनिक रचनाओं में उस अकाल पुरुष को स्मरण करने पर बल दिया है। केवल वही एकमात्र अवलम्ब है जो इस भवसागर से पार करा सकता है।

स्वरूप रानी सरकारी कालेज स्त्रियाँ, अमृतसर। मोबा: ९५०१५-००४८८

११. दशम ग्रन्थ, पृ. ४८

१३. अंबरु डबकै बबर बंबकै.... दशम ग्रन्थ पृ. ३७

१५. दशम ग्रन्थ, पृ. ११

१२. वही, पृ. ४४

१४. अकाल स्तु. दशम ग्रन्थ, पृ. ११

माना है- ओंकार आदि है मूला।^३ गुरु जी के अनुसार मनुष्य अपने सांसारिक कर्तव्यों की पूर्ति करता हुआ भी आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। ईश्वर मनुष्य के अन्दर विराजमान है उसी प्रकार जैसे पुष्प में गंध और शीशे में छाया व्याप्त है। इसलिए परमात्मा को खोजने के लिए वन में जाने की आवश्यकता नहीं।^४ गुरु जी ने ईश्वर को सच्चिदानन्द तथा सर्वदाता माता है।

सर्व दाता॥ सरब ग्याता॥ सरबंभाते॥
सरबं माने॥^५

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने ब्रह्म को स्त्री और पुरुष के भेदों से परे ही माना है। वह पुरुष भी है, स्त्री भी और न वह पुरुष और न ही स्त्री है।^६ सबसे बड़ी शक्ति है। गुरु नानक देव जी ने एक स्थल पर परमात्मा को पुरुष भी और स्त्री भी कहा है।^७ गुरु जी ने एक स्थल पर परमात्मा को लोकमाता भी कहा है- नमो परम ज्ञाता॥ नमो लोकमाता॥ और गुरु गोबिन्द सिंह जी ने चण्डी चरित्र उक्ति विलास में इस भाव को भली-भान्ति व्यक्त किया है- हे काल लोक तारने वाला, धरती का उद्धार करने वाला, दैत्य को मारने वाला तीव्र, तेज तुम्हीं हो। जगत् का

कारण ईश्वर (विष्णु) उसकी कला (लक्ष्मी), जगत् को नाश करने वाला शिव और शक्ति जहां देखता हूं वहीं है। तू ही पारस की मूर्ति है जिस छू लेता है वही सोना बना जाता है।^८

श्री गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने साहित्य में परमेश्वर के निर्माण एवं पोषण गुणों के साथ ही उसके विनाशकारीरूप काल का बड़ा सटीक वर्णन किया है। वे काल को ही कर्ता मानते हैं जो आदि से लेकर अन्त तक अनन्त रूपों को बनाने, बिगाड़ने वाला है।

केवल काल ही करतार॥

आदि अनन्त मूरति गड़न भंजन हार॥^९

काल की आज्ञा से ही विष्णु, ब्रह्मा, शिव, योगी सुरासुर, गन्धर्व यक्ष सर्प आदि जन्म लेते हैं। अन्त में वे काल आने पर नष्ट हो जाते हैं। केवल काल ही अकाल है।^{१०} अन्ततोगत्वा वह सभी को कवलित करता है। काल के विनाशकारी रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कालपुरुष ने बड़े-बड़े देवताओं, दैत्यों, सम्राटों को क्षण भर में समाप्त कर दिया। उसके सन्मुख कोई टिक सके ऐसी किस में शक्ति है। कदाचित् यह कह कर उन्होंने अपने युग

३. कबीर ग्रन्थावली, पृ. २४४

५. दशमग्रन्थ... पृ. ४

७. गुरुग्रन्थ साहब मारु सोहले महला। पृ. १०२०

९. चण्डीचरित्र उक्ति विलास-४

४. काहे रे वन खोजन जाई.... गूजरी की वार, महला ५

६. तेज को प्रचण्ड है अखण्डन को खण्ड है... ९/२६१ दशमग्रन्थ पृ. ३७

८. दशमग्रन्थ पृ. ३

१०. दशमग्रन्थ पृ. ७११

काश्मीर शैवदर्शन में वसुगुप्त का योगदान

—श्री राजेश शर्मा

‘त्र्यम्बकादित्य’ से प्रारम्भ होने वाली शैवदर्शन की जो पुनीत धारा कश्मीर प्रदेश में प्रवाहित हुई, उसे एक नवीन दिशा देने वाले प्रमुख आचार्य वसुगुप्त हैं। जिन्होंने अद्वैतवाद की पृष्ठभूमि पर आधारित शिवसूत्रों को मूलतः परिवर्तित करते हुए सूत्रकार महेश्वर के अनुग्रह के फलस्वरूप इस रहस्यमय ज्ञान को पाकर काश्मीर शैवदर्शन को प्रतिष्ठापित किया। देखा जाय तो ये एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्हें यह रहस्यात्मक ज्ञान उपलब्ध हुआ। यदि शिवसूत्र इस दर्शन की विशिष्टता के आधार हैं तो आचार्य वसुगुप्त इस रहस्य-सम्प्रदाय के महान् उपदेष्टा कहे जा सकते हैं।

काश्मीरी शैवदर्शन के आचार्यों में प्रथम आचार्य होने के कारण ही इनकी प्रसिद्धि नहीं है अपितु शिवसूत्रों के द्वारा इस दर्शन को एक नई दिशा देने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है, एवं धार्मिकपक्ष को प्रतिष्ठा करते

हुए उसे ‘स्पन्ददर्शन’ की अभिक्षा से अभिहित करने वाले भी यही आचार्य हैं। काश्मीर शैवदर्शन का एक निश्चित रूप आचार्य वसुगुप्त की ही देन है।^१ इनका जीवन-चरित्र अभी भी उपलब्ध नहीं है। हाँ प्रमुख शिष्य भट्टवल्लट के स्थितिकाल से सम्बद्ध प्रमाण के आधार पर ही इनके स्थितिकाल का निश्चय किया जा सकता है कि गुरु वसुगुप्त का स्थितिकाल नवमी शताब्दी का पूर्वार्ध अथवा आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध रहा होगा।

आचार्य वसुगुप्त के माता-पिता एवं वंशक्रम के विषय में निश्चित अथवा अनिश्चित रूप में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। फिर भी इनके नाम के साथ ‘गुप्त’ लगने के कारण ऐसा माना जाता है कि काश्मीर में गुप्त परिवार के प्रथम व्यक्ति अभिनवगुप्त हुए हैं। अतः गुप्त शब्द ऐसा आभास दिलाता है कि गुप्त उनके परिवार का उपनाम रहा होगा। एक

१. काश्मीरशैवम् पृ. २२-२३.

२. कश्मीर का संस्कृत के प्रति योगदान, पृष्ठ ३२४

बोध कथा-

नवीन दिशा

- डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी

एक सेठ के पास अथाह धन-सम्पत्ति थी। सर्वत्र वैभव विखरा हुआ था। परन्तु जितना धन उसके पास था, उतना धैर्य उसके पास नहीं था। एक भी पैसा देता, तो हजारों-सैकड़ों लोगों से उसका बखान करता, गीत गाया करता। बेचारे पैसा लेने वाले सदैव के लिए उसके अहसास तले दबे रहते थे

एक दिन सेठ एक साधु के पास गया। साधु से अपनी अमीरी का व्यापक बखान करने लगा, अपनी दानशीलता का गुणगान सुनाता रहा। साधु समझ गया कि वह कितने पानी में है।

बातचीत करते-करते सेठ ने अपना बैग खोला और कुछ रुपए निकालकर साधु के समक्ष रखते हुए बोला, “मैंने सोचा कि आपको पैसे की आवश्यकता होगी, तो मैं साथ ले आया। यह पचास हजार रुपए हैं।”

साधु ने एक बार अपनी दृष्टि सेठ के चेहरे पर डाली फिर उन रुपयों को अपने पास से हटाकर उसी की ओर बढ़ा दिये। बोले, “मुझे तुम्हारे धन की नहीं बल्कि तुम्हारी जरूरत है।”

सेठ मर्माहत हो गया। आखिर साधु

की इतनी हिम्मत कैसे हुई कि उसकी दी हुई भेंट को इस तरह ठुकरा दिया। आज तक किसी ने ऐसा नहीं किया था। सेठ का अभिमान और तीव्र हो गया। उसके नेत्र लाल हो उठे। उसकी हालत देख साधु मुस्कराने लगा। बोला, “क्यों सेठ जी! क्या तुम्हें यह बुरा लग रहा है?”

सेठ जी ने कहा, “बुरा लगने की तो बात ही है! इतनी बड़ी राशि को आपने ठोकर मार दी, मानो जैसे वह मिट्टी-कूड़ा हो।”

साधु कुछ क्षण चुप रहे, फिर बोले, “सेठ याद रखो कि जिस दान से दाता अपने को देता या जोड़ता है, वह धन मिट्टी-कूड़ा ही है। दान का अर्थ होता है- सम विभाजन। दूसरे का हिस्सा तुमने ले लिया है, उसे लौटाने पर अभिमान का अवसर कहाँ रहा? यह तो चोरी का प्रायश्चित्त है।”

सेठ जी का अहंकार चूर-चूर हो गया। उनके हृदय के भीतर का सुप्त भाव जागृत हो उठा। सेठ जी की उस दिन से दिशा-दृष्टि ही बदल गई।

८६, ३२३ देवनगर, कानपुर २०८००३ मोबा. : ०९२३५५११०८३

है। इसमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त आदि विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त विवेचित पाँच कृतियों में से चार कृतियों के रचनाकार वसुगुप्त को सर्वसम्पत्ति से स्वीकार किया जाता है परन्तु इनकी द्वितीय कृति स्पन्दकारिका के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

ऐसा माना जाता है कि शिवसूत्र शैवदर्शन की प्राचीनतम कृति है। इनको शिवोपनिषद् संग्रह, शिव-रहस्यागम संग्रह के नाम से भी जाना जाता है।^{११} परम्परानुसार माना जाता है कि शिव की प्रेरणा से ही आचार्य वसुगुप्त को इन सूत्रों की प्राप्ति होने से शिवप्रोक्त यह सूत्र आचार्य वसुगुप्त के साथ सम्बंधित हुए हैं। वसुगुप्त एवं शिवसूत्र- पारस्परिक प्रगाढ घनिष्टता के परिचायक हैं। यद्यपि सूत्र-प्रणयन का श्रेय आचार्य वसुगुप्त को प्राप्त नहीं है तथापि मानव-देह धारी प्रथम पुरुष वसुगुप्त ही हुए हैं जिन्होंने इन सूत्रों के उपदेशों को स्वयं महेश्वर से प्राप्त करके तदनंतर प्रचारित एवं प्रसारित किया। जनमानस को शिवसूत्रों के उपदेशामृत से आह्लादित करने एवं मानव हृदय में उन्हें प्रतिष्ठित करने का क्रम भगवान्

शिव से प्रारम्भ होकर वसुगुप्त आचार्य के ही माध्यम से वल्लट आदि विद्वानों में संक्रमित होकर निरंतर आगे बढ़ता चला गया।^{१२}

वसुगुप्त की शिवसूत्र प्राप्ति के विषय में अनेकविध कथाओं का भी प्रचलन मिलता है। विभिन्न विद्वानों ने इस विषय की चर्चा अपनी-अपनी चिन्तन शैली से पृथक्-पृथक् की है जैसे आचार्य क्षेमराज का कहना है कि परमशिव ने अनुकम्पा के कारण वसुगुप्त को स्वप्न में ऐसा आदेश दिया कि यहाँ पृथ्वी के महान् शिलातल पर रहस्य है जो कि अनुग्रह प्राप्त करने योग्य अधिकारी में यथेष्ट प्रकाश्य है। निद्राभंग होते ही वसुगुप्त को उनकी जिज्ञासा उस महान् शिलाखण्ड तक ले गई, वहाँ हाथ द्वारा उस शिला को पलटने पर, स्वप्न में शिव के संलाप के अनुसार वसुगुप्त ने उस शिलातल पर शिव-रहस्य के संग्रहभूत शिवसूत्रों को प्राप्त किया।^{१३} क्षेमराज लिखते हैं कि शिवानुग्रह से वसुगुप्त गुरु को महादेवगिरि में वास करते हुए स्वप्न में एक सिद्ध ने उपदेश दिया कि महेश की इच्छा से महादेवपर्वत की महान् शिलातल पर लिखित अत्याधिक रहस्यात्मक शिवसूत्रों को आचार्य ने पा

११. शि. सू. वि., पृ. ३.

१२. स्पन्दकारिका, पृ. ४.

१३. शि., सू. वि., पृ. २/३.

आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि अभिनवगुप्त आदि के पूर्वज अथवा उनके सजातीय परिवार से इनका किसी रूप में सम्बन्ध रहा होगा।

इन्हें शिव का अनन्य आराधक एवं उपासक माना जाता है। कश्मीर में स्थित महादेवगिरि पर पुनितहृदय एवं शिवभक्त साधु के रूप में इनके विचार के उल्लेख मिलते हैं।^३ इन्हें उपदेष्टाओं के उपदेष्टा कहा गया है।^४ ये त्र्यम्बक सम्प्रदाय के एक महान् आचार्य माने गए हैं^५ एवं शिव के अनुग्रह से वसुगुप्त को शिवसूत्रों का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार का वर्णन वसुगुप्त के ऋषि रूप को स्पष्ट करता है।^६ इन्हें शैवदर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का भी पूर्ण ज्ञाता माना जाता है।

वसुगुप्त को पाँच ग्रन्थों का रचयिता कहा जाता है। यद्यपि शिवसूत्रों का कर्तृत्व शिव को ही प्राप्त है तथापि वसुगुप्त की प्रथम कृति इन्हीं सूत्रों को स्वीकार किया जाता है। तीन खण्डों में विभाजित यह उन्नासी सूत्र

क्रमशः, शांभव, शाक्त और आगव उपायों का निरूपण करते हुए काश्मीर शैवदर्शन के मूलसिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। इनकी द्वितीय कृति **स्पन्दकारिका** अथवा **स्पन्दसूत्र** कहलाती है। इस कृति का भी मूलाधार शिवसूत्र ही हैं क्योंकि सूत्रनिष्ठ सिद्धांतों की ही विशद विवेचना इस कृति में है। इनकी तृतीय रचना स्पन्दामृत मानी जाती है। वल्लट की स्पन्दकारिका पर लिखी गई वृत्ति में इनका नामोल्लेख मिलता है।^७ इसके अतिरिक्त क्षेमराज द्वारा भी स्पन्दामृत शब्द का प्रयोग किया गया है।^८ स्पन्दामृत और स्पन्दकारिका को एक ही कृति की दो संज्ञाएं दी जाने की सम्भावना भी की जाती है।^९

वसुगुप्त की चतुर्थ कृति वासवी टीका कही गई है। यह श्रीमदभगवद्गीता पर लिखी गई टीका है। इनका पाँचवा ग्रन्थ **सिद्धान्तचन्द्रिका** है।^{१०} यह पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्य है। यह वृत्तिग्रन्थ न होकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ

३. क. शि. सू. वि., पृ. २.

ख. शि. सू. वा. भा. श्लो. ३.

ग. महादेवगिरि शि. सू. वा. व., श्लो. ३.

४. शि. सू. वा. व., पृ. १.

५. क. का. शै. द. (डा. बी. एन. पण्डित), पृ. २५.

ख. शैविजम काश्मीर के विचार पर पृ. २६.

६. शि. सू. वि., (उपो) पृ. १.

७. स्पन्द. सर्व. (वल्लट), श्लो. अंतिम.

८. स्प. नि., श्लो. २.

९. काश्मीर का योगदान, पृ. ३६९.

१०. सिद्धान्तचन्द्रिका, पृ. ७६.

योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप

—डॉ. जयकृष्ण त्रिपाठी

योगदर्शन के अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अपरामृष्ट जो पुरुष-विशेष है, वही ईश्वर है।^१ अब क्रमशः क्लेशकर्मादि का अर्थ बतलाया जा रहा है—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश को 'क्लेश' कहा जाता है। पुण्य और पापरूप ये दो 'कर्म' हैं। कर्म के फल को (विपाक) कहते हैं तथा उसके अनुरूप समस्त वासनाओं को 'आशय' कहते हैं। वे वस्तुतः मन में रहते हैं किन्तु उनका पुरुष में आरोप किया जाता है। जैसे—पुरुष ही उस फल का भोक्ता हो। जिस प्रकार युद्ध में जय अथवा पराजय का सीधा सम्बन्ध योद्धाओं के साथ होता है किन्तु योद्धाओं की पराजय से राजा की पराजय और योद्धाओं की जय से राजा की विजय मानी जाती है। ठीक उसी प्रकार कर्म भी पुरुष में आरोपित होते हैं और वह उनका कर्ता और भोक्ता माना जाता है। यह स्वरूप सांख्यसम्मत पुरुष का है, किन्तु जिसे पुरुष-विशेष कहते हैं

उसका क्लेशादि के साथ कभी भी सम्बन्ध नहीं होता इसीलिए सूत्र में 'अपरामृष्ट' पद का सन्निवेश किया गया है।

तात्पर्य है कि यदि ईश्वर अचेतन है तो वह प्रकृति हो जाएगा और ऐसी परिस्थिति में उसका आवर्जन सम्भव नहीं है क्योंकि वह अचेतन है। यदि ईश्वर को चेतन माना गया तो सांख्यदर्शन में चितिशक्ति उदासीन और असंसारी होने के कारण उसमें अस्मितादि का अभाव रहेगा तब उसका आवर्जन और अभिध्यान जो समाधिप्राप्ति के लिए आवश्यक माना गया है, कैसे सम्भव है? इस शंका का समाधान करने के लिए पुरुषविशेष का ही ईश्वररूप से प्रतिपादन किया गया है अर्थात्, यह ईश्वर सांख्यदर्शन में प्रतिपादित पुरुषरूप ही है, उससे अतिरिक्त नहीं है।

यदि क्लेशादिशून्य पुरुष को ही ईश्वर माना जाएगा तो कैवल्य अर्थात् ज्ञान को प्राप्त हुए अनेक केवली पुरुष हैं, वे ईश्वर क्यों नहीं

१. पातञ्जलयोगदर्शन १/२४.

लिया।^{१४} इस तरह से क्षेमराज के अनुसार स्वप्न में शंकर द्वारा दिए गए उपदेशासार के अनुसार शिलातल से वसुगुप्त ने सूत्रों को प्राप्त किया।^{१५}

शिवसूत्रविवरण के रचयिता सुधानन्द जाह के अनुसार कश्मीर देश के मध्य में स्थित महादेवगिरि की विशाल शिला पर यथाक्रम यह सूत्र अंकित किए गए।^{१६}

शिवसूत्रवार्तिककार भास्कर की मान्यता क्षेमराज से भिन्न है। उनके अनुसार प्राचीन काल में महादेव पर्वत पर वसुगुप्त के लिए सिद्ध के आदेश से शिवसूत्रों का प्रादुर्भाव हुआ।^{१७}

इसी परम्परा में वार्तिककार वरदराज ने अपनी व्याख्या में लिखा कि शिव की इच्छा से शिलातल पर शिवसूत्रों को लिखकर,

महादेवगिरि पर स्वप्न में गुरु वसुगुप्त को उन सूत्रों का उपदेश दिया।^{१८}

आचार्य वसुगुप्त के प्रमुख शिष्य भट्टवल्लट ने लिखा कि शिव के द्वारा स्वप्न में उपदेश ग्रहण करके महादेवपर्वत पर गुरु वसुगुप्त को शिवसूत्रों की उपलब्धि हुई।

स्पन्दप्रदीपिका के रचयिता श्री उत्पल वैष्णव ने इनके मत का समर्थन करते हुए लिखा कि वसुगुप्त आचार्य को सिद्ध के मुख से रहस्य की प्राप्ति हुई, जिसका ज्ञान उन्होंने भट्ट वल्लट तथा अन्य शिष्यों को प्रदान किया।

ये सभी विवरण शिवसूत्रों के प्रथम ज्ञान के ग्राह्य वसुगुप्त का शिवसूत्रों के साथ सान्निध्य-प्रकाशित करने में यथेष्ट सहायक हैं।

— संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

१४. स्प. वि. क्षेमराज पृ. १-२.

१६. शि. सू., विव. उपोद्घात।

१८. शि. सू., वा. व. वरदराज, श्लो. २/४.

१५. स्प. नि., पृ. ७६.

१७. शि. सू. वा. भा., पृ. २.

योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप

प्रवृत्ति नहीं होती तथापि अपने (स्वयं के) उपकार का प्रयोजन न रहने पर भी कल्पप्रलय, महाप्रलय में ज्ञानधर्म का उपदेश करके मैं संसारी पुरुषों का उद्धार करूँगा। इस प्रकार जीवों पर अनुग्रह ही ईश्वर की प्रवृत्ति का प्रयोजन है। शब्दादि विषयों के उपभोग में विवेकख्याति करके चरितार्थ हुआ चित्त निवृत्त हो जाता है। तत्पश्चात् पुरुष केवली हो जाता है। इस प्रयोजन के लिए विवेकख्याति को उपाय बतलाता है।^३ विवेकख्याति से ही कैवल्य का लाभ प्राप्त करके पुरुषों का उद्धार होता है।^४ यह करुणायुक्त इस विषय में पंचशिखाचार्य ने कहा है कि—“आदि विद्वान् भगवान् परमर्षि कपिल ने करुणावश होकर निर्माण चित्त में अधिष्ठान करके प्रश्न करने वाले जिज्ञासु आसुरि को सांख्यशास्त्र कहा था”।

परमेश्वर प्राचीन गुरुओं का भी गुरु है क्योंकि वह ब्रह्मा आदि प्राचीन गुरु द्विपरार्थिक

काल से अवच्छिन्न हैं जिसके ऐश्वर्य में अवच्छेदक के रूप में काल नहीं आता वह परमेश्वर पूर्व गुरुओं का भी गुरु है।^५

ऊँकार ईश्वर का वाचक है और ईश्वर उससे वाच्य है।^६ वाच्य-वाचक में अभेद मानकर उपनिषदों में अनेक स्थलों पर ओम् ब्रह्म ओम् इत्येकाक्षर ब्रह्म आदि वाक्य मिलते हैं। वाच्य-वाचक सम्बन्ध नित्य है ईश्वर उस संकेत से द्योत्य है। संकेत के द्वारा केवल उसका प्रकाशन किया जाता है। जैसे पूर्व से ही विद्यमान पिता-पुत्र के जन्य-जनक भाव सम्बन्ध को संकेत के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है कि यह इसका पुत्र है और यह इसका पिता, उस संकेत (ऊँ) के द्वारा परमात्मा का चिन्तन और उसके वाचक (ऊँ) का जप और पुनः वाच्यार्थ परमात्मा का क्रमशः इसी प्रक्रिया से चिन्तन करने से समाधि की प्राप्ति होती है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

३. व्यास भाष्य (पा. यो. द.) १/२५.

४. पा. यो. द. १/२६.

५. तस्य वाचकः प्रणवः ११ पा. यो. द. १/२७.

माने जायेंगे? इसका उत्तर यह है कि हिरण्यगर्भादि केवली पुरुष पूर्वस्थित प्राकृतिक बन्धनों का विच्छेद करके ही मुक्त हुए हैं, अर्थात् वे क्लेशादि परामर्शशून्य नहीं हैं जबकि ईश्वर सदा बन्धनत्रय से शून्य है। प्रकृतिलयों के लिए प्राकृतिक बन्ध, विदेहों का वैकारिक बन्ध, एवं दिव्यादिव्यविषयभागियों का दक्षिणाबन्ध होता है। उसमें प्रथम (प्राकृतिक बन्ध) आठ प्रकृतियों में अभिमानरूप होता है, दूसरा (वैकारिक बन्ध) शब्दादिविषयरारूप होता है, तीसरा (दक्षिणाबन्ध) गृहस्थों का कर्म, दक्षिणा, दान, अध्ययन आदि के द्वारा होता है जबकि ईश्वर में त्रैकालिकबन्धाभाव है। मुक्त पुरुष की पूर्वबन्ध कोटि मानी जाती है न कि ईश्वर की। प्रकृतिलीनों की उत्तरबन्धकोटि की सम्भावना है, ईश्वर की नहीं। ईश्वर सदैव मुक्त (दुःखशून्य) और अप्रतिहत इच्छा से युक्त है।

ईश्वर का ऐश्वर्य साम्य और अतिशय से शून्य है। उसका ऐश्वर्य अन्य किसी के ऐश्वर्य द्वारा अतिक्रान्त नहीं होता क्योंकि जो ऐश्वर्य अतिशय से युक्त है वही ईश्वर का ऐश्वर्य है। अतएव जिस पुरुष में ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है, वही ईश्वर है। ईश्वर के ऐश्वर्य के समान दूसरे

किसी का ऐश्वर्य नहीं है क्योंकि समान ऐश्वर्यशाली दो पुरुषों के होने पर यदि वे एक ही वस्तु के विषय में एक ही काल में परस्पर विपरीत कामना करेंगे तो एक की कामना सिद्ध होने तथा दूसरे के प्राकाम्य की हानि होने पर उसे न्यूनता आ जाएगी। इस प्रकार दोनों पुरुषों के समान ऐश्वर्यवान् होने पर एक ही काल में किसी की अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी। अतएव जिसका ऐश्वर्य साम्य और अतिशय से शून्य है, वही ईश्वर है और वही पुरुषविशेष है।

ईश्वर की सर्वज्ञता में हेतु निरतिशयता है। वह किसी पुरुष में अल्प और किसी पुरुष में अधिक देखी जाती है। यज्ञ सर्वज्ञ का बीज होने वाला ज्ञान बढ़ते-बढ़ते जहां निरतिशय को प्राप्त होता है, वही सर्वज्ञ ईश्वर है।^१ परिणाम जिस प्रकार क्रमशः बढ़ता हुआ निरतिशय हो जाता है उसी प्रकार सर्वज्ञ बीज क्रमशः बढ़ता हुआ निरतिशय हो जाता है जिस पुरुष में सर्वज्ञ बीजज्ञान की पराकाष्ठा हुई है वही सर्वज्ञ है और वही पुरुषविशेष है। यहां इस प्रकार अनुमान प्रयोग है।

ईश्वर का नित्यमुक्त होने के कारण किसी भी स्वार्थ का साधन करना उसका प्रयोजन नहीं हो सकता। कोई प्रयोजन न होने पर किसी भी बुद्धिमान् पुरुष की किसी भी क्रिया में

सबका पालक ही किया है। गुरु नानक देव जी ने ईश्वर को कर्ता पुरुष, निर्वैर, भयरहित, शत्रुरहित समय से परे एवं योनियों से रहित कहा है- परमात्मा के इस स्वरूप पर अपनी आस्था के कारण गुरुओं ने उसके संत पालक, दुष्ट घातक स्वरूप की आवश्यकता भी समझी है उनका सदैव यही आग्रह रहा है कि मनुष्य अपने सांसारिक कर्तव्यों की पूर्ति करता हुआ भी आध्यात्मिकता की ओर बढ़ सकता है। गुरुओं का यह घोषित वाक्य है 'मन से राम हाथ से काम।'

श्री गुरु गोबिन्द सिंह को ईश्वर के इन दोनों स्वरूपों (पालक और संहारक)की अनुभूति परम्परा से प्राप्त हुई। इनकी रचनाओं में ईश्वर का यह निरपेक्ष और सापेक्ष रूप बड़े मुखर रूप में उभर कर आता है।

पहले रूप में गुरु जी की परम आकांक्षा सदैव ईश्वर के चरणों में लिप्त रहने की है और दूसरे में वे ईश्वर से वह शक्ति चाहते हैं जिससे वे अपने शत्रुओं से सफलतापूर्वक युद्ध कर सकें और यदि आवश्यकता पड़े तो युद्धभूमि में शत्रुओं का विनाश करते हुए वीरगति को प्राप्त हों। इस आधार पर गुरु जी सभी भक्तिपूर्ण रचनाओं को दो भागों में बाँट सकते हैं-

(१) विग्रह भक्तिपूर्ण रचनाएं- जापु, अकाल स्तुति, स्फुट सवैये, दान प्रबोध आदि
(२) उद्देश्य प्रेरित रचनाएं- चौबीस अवतार, चण्डीचरित और चरित्रोख्यान में व्यक्त भक्तिपूर्ण अभिव्यक्तियाँ।

जहां तक गुरु गोबिन्द सिंह के इष्टदेव के रूप की बात है तो हम कह सकते हैं कि संसार के सभी धर्मों में परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास किसी न किसी रूप में है। यही रूप भक्त के मन में अपने इष्ट के अस्तित्व को पुष्ट करता है। गुरु जी ने ईश्वर के अस्तित्व को सर्वज्ञ देखा है। ईश्वर उनके लिए प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने इसी भाव को 'जापु' के प्रथम पद में इस प्रकार कहा है-

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।
रूप रंग और रेख केख को ऊ कहि न सकति किह ।

(दशम ग्रंथ, पृ. १)

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की पौराणिकता को अपनाते हुए अपने दशम ग्रंथ में पौराणिक भावना के दो रूपों को स्पष्ट किया है-

(१) पहले रूप में अवतारवाद का स्पष्ट खंडन किया गया है। निराकार

श्री गुरु गोबिन्द सिंह की भक्ति-भावना

—डॉ. सुनीला शर्मा

श्री गोबिन्द सिंह जी श्री गुरु नानक देव की आध्यात्मिक परम्परा के दसवें उत्तराधिकारी थे। उस समय तक सिख-गुरुओं के मत का प्रचार पंजाब और पंजाब के बाहर के प्रदेशों में हो चुका था। स्वाभाविक रूप से गुरु गोबिन्द सिंह ने उस उत्तरदायित्व के अनुकूल ही अपनी भक्तिमयी अभिव्यक्ति पूर्ववर्ती नौ गुरुओं के अनुसार ही रखी।

किन्तु गुरु गोबिन्द सिंह तक आते-आते सिख-सम्प्रदाय एक विशिष्ट राजनीतिक स्वरूप भी ग्रहण कर चुका था। कुछ इतिहासकार गुरु जी को शान्तिपूर्ण धार्मिक-सम्प्रदाय को राजनीतिक स्वरूप देने का श्रेय (अथवा दोष) देते हैं। किन्तु सिख-इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करने एवं उसके क्रमिक परिवर्तन को देखने पर पता चलता है कि गुरु गोबिन्द सिंह का दिया स्वरूप आकस्मिक नहीं था। मध्यकालीन भारतीय सन्तों विशेषरूप से

सिख-गुरुओं ने पारलौकिक जीवन की उपलब्धियों के सम्मुख इहलौकिक जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की— धर्म केवल पारलौकिक सुख का ही साधन नहीं है, ऐसा ऋषियों ने भी कहा है।

मध्यकालीन भक्तों ने ईश्वर के दो रूपों का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है— एक वह जो सर्वोच्च सर्वशक्तिमान् जन्म मरण से रहित, सर्वव्यापी है— जिसका कोई मित्र, शत्रु नहीं है जो सबका निर्माता तथा पालक है। दूसरा रूप अवतारों की परम्परा का है— जो दुष्टों का संहार करने एवं संतों का रक्षक, असत्य का विनाश कर सत्य की प्रतिष्ठा करने वाला है— पहला रूप हमारी विशुद्ध भक्ति का परिणाम है जबकि दूसरा ईश्वर सामाजिक परिस्थितियों के कारण अस्तित्व में आता है।

सिख-गुरुओं ने ईश्वर के रूप का प्रतिपादन अधिकांशतः सर्वशक्तिमान् और

दृष्टि से नवीनता दिखाई देती है उन्होंने माँ चण्डी को अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया है एवं माँ का स्मरण सदैव श्रद्धा से किया है। वे माँ चण्डी को शक्ति का रूप मानते हैं जो काल के रूप में शत्रुओं का हनन करती है।

गुरु जी ने अपनी अनेक रचनाओं में परमेश्वर की लीला का वर्णन किया है। 'चण्डी चरित्र' के प्रथम पद में ब्रह्मा की लीला का उल्लेख है-

काल संभन का करत पसारा ।।

अंत काल सोई खापन हारा ।।

सम्पूर्ण सिख-साहित्य में परमात्मा के नामों के सम्बन्ध में कोई विशेष आग्रह नहीं है। सिख गुरुओं के अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए सभी प्रचलित नामों का उन्मुक्त प्रयोग किया है- वे चाहे निर्गुणभाव वाले हों, चाहे सगुण भाव के, चाहे हिन्दु-परम्परा के हों, चाहे मुस्लिम परम्परा के। उनका मानना है नाम तो केवल भावों को व्यक्त करने का माध्यम है। इसी परम्परा को गुरु गोबिन्द सिंह ने भी स्वीकार किया है। हिन्दू-परम्परा के सभी प्रचलित नाम गुरु जी के भक्ति-काव्य में उपलब्ध हैं।

गुरु जी की भक्ति-भावना एक योद्धा की

भक्ति है क्योंकि गुरु जी अपने समकालीन-उत्पीड़न और आंतक के वातावरण से उत्पन्न हुई मानसिक दुर्बलता को बदल देना चाहते थे, इसलिए चाहे गुरु जी की वाणी में भी परमात्मा के सुन्दर सलोने रूप की पर्याप्त चर्चा हुई है परन्तु उनकी अधिकांश रचनाओं पर योद्धा रूप छाया हुआ है इसीलिए ईश्वर के उग्ररूप को अधिक प्रधानता मिली है।

भक्ति के महत्व को गुरु जी ने केवल असंदिग्ध रूप से स्वीकार ही किया है वरन् सभी प्रकार से उसे पुष्ट भी किया है। उनकी दृष्टि में कोई भी भक्ति कितनी भी महान् क्यों न हो, परमात्मा के सम्मुख उसकी स्वीकृति केवल भक्ति के आधार पर ही होती है।

गुरु जी ने भक्ति में बाहरी सभी पाखण्डों को कर्मों को मिथ्या समझा है। उनका कहना है सभी धर्मों को निष्फल मानो, बिना एक परमेश्वर के नाम के सभी कर्मों को भ्रममात्र समझो-

सब करम जो कर जान ।।

सभ धरम निशभाव मान ।।

बिन एक नाम आधार ।।

सब करम भरम विचार ।।

वह कहते हैं वही इस भवसागर से तरकर

श्री गुरु गोबिन्द सिंह की भक्ति-भावना

परमात्मा की भक्ति का आग्रह है। फिर भी परमात्मा के दयालुता एवं कृपालता आदि गुणों पर प्रकाश डालने के लिए पौराणिक कथाओं का उल्लेख आदि-ग्रंथ के अनुसार हुआ है।

- (२) दूसरे रूप में अवतारवाद को स्वीकार किया गया है। परन्तु अवतारवादी ईश्वर को ब्रह्म के समकक्ष नहीं माना गया। इनका यह दृष्टिकोण अद्वैतवादी दृष्टिकोण के निकट है— जिन्होंने ईश्वर को बड़ा नहीं वरन् उसे विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न जीव ही स्वीकार किया है। अवतार भी ईश्वर का मानते हैं, ब्रह्म का नहीं— ‘चौबीस अवतारों का वर्णन करते समय ब्रह्म अथवा काल-पुरुष और विष्णु का यह अन्तर अनेक स्थानों पर दिखाई देता है।’

श्री गुरु गोबिन्द सिंह की अवतार-भावना सोद्देश्य है— गुरु जी केवल एक भक्त या भक्ति के प्रचारक मात्र नहीं थे, भक्त होते हुए भी वह एक राजपुरुष थे, वह अपने युग के आततायी शासन के विरुद्ध उभरते हुए जन-आन्दोलन के नेता थे। गुरु जी के सहस्रों वर्ष

पूर्व गीता में साधुओं के परित्राण एवं दृष्टों के विनाश की व्यक्त उक्ति जन-मन में अवतार की कल्पना को सजीव बनाए हुए थी। गुरु गोबिन्द सिंह ने स्वयं अपने-आपको भी इसी परम्परा में स्वीकार किया है। यद्यपि वे अपने-आपको ईश्वर नहीं कहते— परम-पुरुष का दास कहते हैं—

गुरु जी अवतार-कथाओं द्वारा जनता में आत्मविश्वास और शक्ति का संचार करना चाहते थे— उनका मानना था कि अवतारों को जन्म देने वाली शक्ति काल है— वही सब को जन्म देता है व वही सब का अंत करता है। वह अनेकों रूपों में सब के अंदर समाहित होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इसी काल पुरुष के देह से जन्म लेते हैं। पौराणिक साहित्य में जो स्थान विष्णु को प्राप्त है गुरु जी ने वही स्थान काल को अपनी रचनाओं में दिया है— गुरु जी द्वारा व्यक्त सभी अवतार— वामनावतार, नृसिंह अवतार, रुद्रवातार, जालन्धरावतार, रामावतार, कृष्णावतार— दशम ग्रंथ में ‘काल’ विष्णु के धारण करने को कहते हैं।

परमात्मा के नारी रूप की ओर गुरु जी से पूर्व किसी सिख-गुरु का झुकाव नहीं था— किन्तु गुरु गोबिन्द सिंह के काल में हमें इस

निष्काम-कर्मयोग

—श्री राम शरण युयुत्सु

जन्म-जन्मान्तर के अज्ञान पर नित्या-नित्यविवेक के अभाव में वासनायुक्त व्यवहार के कारण गुण-दोषों का वास्तविक बोध नहीं होता। किंतु मोक्ष के लिए परम साधनरूप श्रवण-मनन आदि का दृढ़तापूर्वक अवलम्बन आवश्यक है। अतः दृष्टिकोण परिवर्तन के लिए अनासक्त भाव से यज्ञादि में मन को लगाना चाहिए। श्रीमद्भागवत में भिक्षु ने गाया है—

अर्थस्य साधने उत्कर्षे रक्षणे व्यये।

नाशोपभोग आयासस्त्रिचिन्ता भ्रमो नृणाम्।

(११.२३.१७)

‘धन के अर्जन में कई तरह के संताप होते हैं। उसके उपार्जन हो जाने पर उसकी रक्षा में संताप, कहीं डूब न जाये—फिर इस चिन्ता में उसे सदा जलना पड़ता है। नाश हो जाये तो जलना, खर्च हो जाये तो जलना, छोड़कर मरने में जलन, तात्पर्य यह कि आदि से अन्त तक

अर्थ-काम से केवल संताप ही रहता है।’ इसलिये सांसारिक विषय हेय कहे जाते हैं। यही दशा पुत्रप्राप्ति, मान-बढ़ाई आदि की है। जीवों में प्राप्ति की इच्छा से लेकर वियोग तक संताप बना रहता है। ऐसा कोई सुख नहीं, जो संताप देने वाला न हो; किंतु निष्कामकर्म योगी के लिये संसार कभी किसी भी रूप में संतापदायक नहीं होता। अतः अनासक्त भाव से सत्कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से आसक्ति को त्यागकर इस प्रकार कर्म करते रहने के लिए इसी तत्व को लक्ष्य कर रहा है—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।

योगिनः कर्मकुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

(५.११-१२)

कर्मयोगी ममत्व-बुद्धि से रहित केवल

श्री गुरु गोबिन्द सिंह की भक्ति-भावना

जीवन-मरण के चक्कर से मुक्त होगा जो बाह्याचार के धर्मों का त्याग करके एकचित्त होकर कृपानिधि का जाप करेंगे। वह नाम के जाप पर बल देते हैं इसे ही भक्ति का उत्तम साधन मानते हैं। इसके साथ ही वह बाह्याचार का त्याग, कामनाओं का त्याग, विषयों का त्याग करने को कहते हैं-

काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै।
तब ही आत्म तत्व को दरसे परम पुरख कह पावै।

गुरु जी मानवमात्र की समता में विश्वास रखते हैं उनका मानना है संसार में चाहे कोई संन्यासी है, योगी है, ब्रह्मचारी है, यती है, तुर्क है, शिया है या सुन्नी है पर सबसे पहले वह एक मनुष्य है, इस कारण सभी एक समान हैं कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

गुरु जी योग में विश्वास करते हैं। वे कहते

हैं हे मन! इस प्रकार का योग करो कि जिसमें बाह्य साधनों या दिखावे के कर्मों की आवश्यकता न हो- भगवान् की कृपा को वह जीवन का आधार मानते हैं उनका कहना है अगर भगवान् कृपा करे तो सब कुछ सम्भव है-

मुक उभरे शास्त्र खटि पिंग गिरन चढ़ि जाइ।

अंध लखे बहरो सुने जो काल कृपा कराइ।

गुरु जी प्रेमभक्ति पर बल देते हुए कहते हैं- जब तक भक्ति में प्रेम का भाव नहीं है। आप प्रभु की कृपा को प्राप्त नहीं कर सकते हो।

अंत में मैं केवल इतना कहना चाहूंगी कि गुरु जी की भक्ति-भावना में वह सभी भाव विद्यमान हैं जो न केवल उस समय के लिए सारगर्भित थे बल्कि आज भी हम सब के लिए मार्ग-दर्शक हैं।

सरूप रानी सरकारी कालेज स्त्रियाँ, अमृतसर।

निष्काम-कर्मयोग

व्यवहार, देखभाल तथा प्रबन्धव्यवस्था करने में लगी रहती है। इसी प्रकार निष्काम कर्मयोगी परमात्मा से सम्बन्ध जुटाकर परमात्मा के प्रति समर्पित होकर रहता है। सभी कर्म करते समय स्वयं को परमात्मा के ही कार्य में निमित्त मानता है और अपने तन, मन, धन को परमात्मा का ही मानने से मनुष्य का मोह और आसक्ति मिटती है। वे उसे माया के कार्य में नहीं लगाते; प्रत्युत वह गृहस्थ होते हुए कमल-दल के समान न्यारा और उनका प्यारा होकर रहता है। यही वह योग है, जिससे मनुष्य को विदेही अथवा अव्यक्त अवस्था प्राप्त होती है और सब

चिन्ताएं मिट जाती हैं तथा उसका चित्त गद्गद हो जाता है।

मन, वचन तथा कर्म को ईश्वरीय सम्बन्ध के अनुकूल बनाना ही निष्काम-कर्मयोग है। अपनी सारी दिनचर्या में मानसिक, वाचिक और शारीरिक कर्म से एकमात्र सम्बन्धी परमपिता परमात्मा को अपने शारीरिक पिता के ही धर्म, कुल, सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अनुसार बरतना ही यौगिक जीवन है। बुद्धिमान् व्यक्ति कभी ईश्वर के गुणों तथा कर्मों के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। गीता का निष्काम कर्मयोग यही सिखाता है।

श्री अंगिरा शोध संस्थान, ४१९/३, शांति नगर, पटि० चौक,
जीन्द-१२६१०२ (हरि०)

इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं। कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा के फल में आसक्तियुक्त होकर बंधता है। कठोपनिषद् में निष्कामभाव की महिमा ऐसी ही बतायी गई है-

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

(२.३.१४)

मनुष्य का हृदय नित्य-निरन्तर विभिन्न प्रकार की ऐहलौकिक और पारलौकिक कामनाओं से भरा रहता है इसी कारण न तो कभी वह यह विचार करता है कि परम आनन्दस्वरूप परमेश्वर को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है और न काय-विषयों की आसक्ति के कारण वह परमात्मा को पाने की अभिलाषा ही करता है। वे सारी कामनाएं सकाम पुरुष के हृदय से जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब यह सदा से मरणधर्मा प्राणी हो जाता है और यही इस मनुष्य शरीर में ही वह परब्रह्म परमेश्वर का भलीभाँति साक्षात् अनुभव कर लेता है। निष्काम-कर्मयोग करने

निश्चय्योति

की प्रेरणा देते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।

(गीता १२.६-७)

‘जो अपने सब कर्म मुझे समर्पित करते हैं, मुझ में परायण हैं और एकनिष्ठा से मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं- जिनका चित्त इस प्रकार मुझ में ओत-प्रोत है, उनका जीवन और मृत्युमय संसार-सागर में (गोते लगाने) से मैं अविलम्ब उद्धार कर देता हूँ।’

हम देखते हैं कि संसार में पिता-पुत्र, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि के सम्बन्ध में एक-दूसरे के प्रति इतना तो अर्पित होता ही है कि वह दिनभर उनके लिये धन्या करता है, उनके दुःख-सुख के लिये रातभर जाग भी लेता है, अपना धन, समय और शक्ति भी लगाता है, मानो वह उन्हीं का होकर रह गया है; उनके व्यवहार से ऐसा लगता है कि उसका सारा जीवन ही सम्भवतः पत्नी और बच्चों इत्यादि के लिये है। इसी तरह पत्नी सारा दिन अपने पति के लिये तथा बच्चों के लिये कार्य,

सकती-

न ही रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते ॥^८

इससे पुष्ट होता है कि मनुष्य को जहाँ कहीं भी आनन्द अर्थात् रस की प्राप्ति होती है, वह वहीं जाता है, वस्तुतः आनन्द ही मुख्य रूप से उसकी प्रवृत्ति का कारण होता है। आचार्य अभिनवगुप्त ऐसा ही मानते हुए 'रस' को नाट्य में "सूत्रस्थानीय" कहा है।^९

रस शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ:-

कोशग्रन्थों में "रस" शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं जैसे-स्वाद, जल, शृंगार, काव्य, विष, द्रव्य, पारद, राग, गृह, धातु, तिक्त आदि भोजन के छः रस, परमात्मा आदि।^{१०} ऐसा प्रतीत होता है कि भरतमुनि ने रस शब्द का ग्रहण "अथर्ववेद" से किया है।^{११} कामसूत्र में रस को रीति, प्रीति, वेग, राग का पर्यायवाची माना है।^{१२} भरतमुनि ने रस की दो परम्पराओं को माना जिनमें एक में रसों की कुल संख्या

आठ, दूसरे में नौ स्वीकार की है।^{१३} भरतमुनि ने नाट्य में रस को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है।^{१४} इनका मानना है कि "नाट्य" ही वह कला है, जिसमें दृश्य व श्रव्य,^{१५} चित्र एवं वाणी सबका समावेश है। केवल इसी में रसाभिव्यक्ति पूर्णतया हो सकती है। यह कला का पूर्णरूप है और वह केन्द्र है, जिसके चारों ओर अन्य कलाएं घूमती हैं।^{१६} रस के विषय में भरतमुनि का-

तत्रविभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ॥^{१७}

यह सूत्र मूल है। आचार्य अभिनवगुप्त भरतमुनि के इस सूत्र को रस-लक्षण सूत्र मानते हैं।^{१८} आद्याचार्य भरत लिखते हैं कि जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यञ्जनों, औषधियों तथा द्रव्यों से "षाडवादि" रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायीभाव भी (नाट्य) रस-रूप को प्राप्त होते हैं।^{१९} उनके मतानुसार

८. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ६/३३.

९. आचार्य अभिनवगुप्त अभिनवभारती, का. ६/३१.

१०. वामन शिवराम आपटे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ. ८४९.

११. जग्राह पाट्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च । यजुर्वेदादभिनयां च रसानाथर्वणादपि ॥ नाट्यशास्त्र १/१७.

१२. आचार्य वात्स्यायन, कामसूत्र २/१/६५.

१३. ना. शा. ६/८४.

१४. यथोपरि ६/३२.

१५. यथोपरि १/११.

१६. डॉ. प्रकाश वीरेश्वर एवं नूपुर शर्मा, कलादर्शन, पृ. ५१.

१७. यथोपरि, अध्याय-६, कारिका-३१.

१८. अभिनवभारती, पृ. ४४२.

१९. यथोपरि, पृ. ४९४-९५

कला के परिप्रेक्ष्य में रस सिद्धान्त एवं रस संख्या विमर्श

—सुश्री कीर्ति शर्मा

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की परम्परा में रस सिद्धान्त का विशिष्ट महत्त्व है। समस्त कलाओं का सौन्दर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। सौन्दर्य वह तत्त्व है जो कला में आनन्द प्रदान करता है एवं दर्शकों को आकर्षित भी करता है।^१ रससिद्धान्त एवं उससे सम्बन्धित सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय भारतीय सौन्दर्य-शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भरतमुनि को जाता है।^२ किन्तु ऐसे भी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि भरतमुनि से पहले इस सिद्धान्त का पर्याप्त विकास हो चुका था।^३ भरतमुनि के ग्रन्थ “नाट्यशास्त्र” में सर्वत्र आनुवंशीय श्लोक इस कथन की पुष्टि करते हैं

कि भरतमुनि के समय तक शिष्य-प्रशिष्य परम्परा के माध्यम से रस सिद्धान्त का पर्याप्त विकास हो चुका था।^४ अभिनवभारती के रचयिता अभिनवगुप्त ने इस परम्परा का स्पष्ट उल्लेख किया है।^५ वैसे तो भरतमुनि ने अपने पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों का उल्लेख अपने नाट्यशास्त्र में किया है^६ परन्तु उनके ग्रन्थों के अभाव में भरतमुनि ही रससम्प्रदाय के प्रथम प्रतिष्ठित आचार्य कहे जा सकते हैं।^७ भरतमुनि ने रस से सम्बन्धित जिन मूल तत्त्वों की प्रतिष्ठा की, उनके पश्चात् सभी आचार्य उन्हीं का अनुसरण करते रहे। भरतमुनि के अनुसार रस के बिना किसी भी अर्थ की प्रवृत्ति नहीं हो

१. डॉ. कृष्णकुमार, अलंकार शास्त्र का इतिहास, पृ. सं. १७.
२. डॉ. रमा दुबलिश व डॉ. देवीचन्द्र शर्मा, नाट्यसिद्धान्त एवं नाट्य साहित्य का इतिहास पृ० २३.
३. S.K.De History of Sanskrit Poetics, Vol-2, page-17-18.
४. डॉ. नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृ. १०.
५. अभिनवभारती, पृ. ६००
६. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ६/३३, ६/५०, ६/६३.
७. आचार्य राजशेखर, काव्यमीमांसा, पृ. ४००.

निर्वहण में आश्रय को प्रयत्न करना पड़ता है। सात्त्विक अनुभाव आठ होते हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, और प्रलय।^{१८} ये स्वतः उद्भूत होने से अयत्नज कहलाते हैं।

संचारीभाव—उन मनोविकारों का नाम है जो आश्रय और विषय के मन में आते और जाते रहते हैं। संचारीभाव स्थायीभाव के सहकारी कारण हैं, इनकी संख्या तैतीस बताई गयी है।^{१९} संचारीभाव को प्रत्येक स्थायीभाव के साथ विशेष रूप से अभिमुख होकर चलने के कारण **व्यभिचारी भावों** की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है।^{२०} आचार्य गंगाट ने भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या में कहा है कि जो लोक में रति आदि स्थायी भावों के कारण कार्य एवं सहकारी कारण है, वे ही काव्य या नाटक में प्रयुक्त होने पर क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहलाते हैं तथा इन विभावादि के द्वारा जो स्थायीभाव व्यक्त होता है वह रस कहलाता है।^{२१} रससूत्र में प्रयुक्त संयोग और निष्पत्ति शब्दों के अर्थ विवादास्पद रहे हैं। परवर्ती संस्कृत आचार्यों ने

इन दोनों शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ करते हुए अपने-अपने काव्यशास्त्रीय और दार्शनिक मत के अनुसार इस उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या की है। इन आचार्यों में भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, और अभिनवगुप्त के मत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संयोग—शब्द की व्याख्या करते हुए भरत ने लिखा है—जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपयोग करते हुए प्रसन्नचित्त पुरुष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्ष आदि का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित, वाचिक, आंगिक, तथा सात्त्विक (मानसिक) अभिनयों से संयुक्त स्थायीभावों का आस्वादन करते हैं और हर्ष आदि को प्राप्त होते हैं।^{२२} “निष्पत्ति” का अर्थ किया है—“जिस भाँति नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से (भोज्य) रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से “षाडवादि” रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव (नाट्य) रसरूप

२८. ना. शा., अध्याय-६.

३०. साहित्य दर्पण-३/४०.

३२. ना. शा. पृ. ३१५-३१६

२९. वही, १८/२१.

३१. काव्यप्रकाश, ४, २७-२८.

३३. वही.

‘नानाभावोपगत स्थायीभाव’ ही रस हैं। ध्वनिपूर्वकाल में रस की परिभाषा का यही रूप प्रायः मान्य रहा। भरतमुनि के रससूत्र के व्याख्याता आचार्यों के दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप रस का मूल रूप परिवर्तित हो गया। इस परिवर्तन का श्रेय आचार्य अभिनवगुप्त को है। उनके मतानुसार स्थायी-भाव निर्विघ्न अनुभूति की विश्रान्ति दशा में रसनीय होने से रस बन जाता है।^{१०}

भाव तीन प्रकार के होते हैं—स्थायीभाव, अनुभाव तथा संचारीभाव अथवा व्यभिचारि-भाव।^{११} स्थायीभाव उन भावों को कहते हैं जो सहृदय के चित्त में वासनारूप से सदा विद्यमान रहते हैं। इन भावों को कोई भी अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव दबाने की क्षमता नहीं रखता। ये आस्वाद का अंकुर कंद है।^{१२} यही भाव विभावादि द्वारा आस्वाद्यमान अवस्था में पहुँचकर रस बन जाता है। सामान्यतः इन भावों की संख्या नौ मानी गयी है—रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय,

और निर्वेद।^{१३} यही भाव क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, और शान्त रसों में अभिव्यक्त होते हैं। स्थायीभाव विभावादि के संयोग से रस रूप में निष्पन्न होते हैं।

भाव के उद्बोधक और उद्दीपक कारण विभाव कहलाते हैं। विभाव के आलम्बन और उद्दीपन दो भेद होते हैं।^{१४} नाटकादि में जिन पात्रों के देखने से सामाजिक रूप में रति, उत्साह, आदि भाव रसरूप में निष्पन्न होते हैं उन्हें आलम्बन विभाव कहा जाता है।^{१५} और जो रस को उद्दीप्त करते हैं वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं।^{१६} अनुभाव उसे कहते हैं जो भाव के पीछे होने वाला भाव होता है। आचार्य विश्वनाथ के मत में—हृदय में जागरित इत्यादि भावों को बाह्यतः प्रकाशित करने वाला कार्य अनुभाव कहलाता है।^{१७} अनुभाव के आंगिक, वाचिक, आहार्य, और सात्त्विक ये चार रूप हैं। इनमें से आंगिक, वाचिक और आहार्य को सयत्नज अनुभाव कहा गया है क्योंकि इनके

२०. यथोपरि, पृ. ४२८.

२२. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण-३/१७४.

२३. ना. शा. ६/१५.

२५. साहित्य दर्पण, ३/२९.

२७. वही, ३/१३३.

२१. ना. शा. अ. -६, कारिका-३१.

२४. (क) ना. शा. अध्याय-६, कारिका-१८-२१.

(ख) चन्द्रालोक, ६/१.

२६. वही, ३/१३१.

अनुमान द्वारा आनन्द “रस” का अनुभव करता है।^{३७} इसलिए इसे अनुमाप्य-अनुमापकभाव द्वारा रस निष्पत्ति कही जाती है। इन्होंने “संयोगात्” का अर्थ अनुमाप्य-अनुमापकभाव सम्बन्धम्, “निष्पत्ति” का अर्थ अनुमिति किया है। अर्थात् अनुमाप्य-अनुमापकभाव, सम्बन्धात् रसस्य उत्पत्तिः= निष्पत्ति होती है।

इस मत का खण्डन निम्न तर्कों पर किया गया है-

1. अभिनेता मूल विभावों रामादि के भावों का अनुकरण नहीं कर सकता। क्योंकि भाव अनुकरणीय नहीं होते।^{३८}
2. आनन्दानुभूति अनुमान से नहीं प्रत्यक्ष से होती है। भोजन आदि के अभाव में क्या अनुमान से सन्तुष्टि हो सकती है?^{३९}
3. दर्शक भाव का स्वयं अनुभव नहीं करता और वह केवल अनुमान के आधार पर आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता है?^{४०}
4. दर्शक जब अभिनेता को ही मूल विभाव समझ लेगा तो वह उन्हीं के भावों का अनुभव करेगा। ऐसी स्थिति में जब वह रामादि विभावों में दुःख अनुमान करता है तो दुःखानुभूति होनी चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं

होता।^{४१} सूत्र के तृतीय व्याख्याकार आचार्य भट्टनायक के हैं।

आचार्य भट्टनायक

इनका मत मुक्तिवाद के नाम से प्रचलित है। आचार्य भट्टनायक ही प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने रस की स्थिति दर्शक-पाठक के हृदय में मानी है। इन्होंने इसकी अलौकिकता तथा उसकी सामाजिक (दर्शक) द्वारा आनन्द की अनुभूति की बात को सिद्ध करने के लिए तीन व्यापारों की कल्पना की-

अभिधा व्यापार-जिसके द्वारा काव्य-नाटक के साधारण अर्थ का ज्ञान होता है।

भावकत्व व्यापार--इसके द्वारा काव्य-नाटक के रामादि विभाव के भाव अपने-पराये के बन्धान से छूट कर “साधारणीकृत” हो जाते हैं। इस स्थिति में भाव दर्शक या पाठक के लिए उपयोग के योग्य बन जाते हैं।

भोजकत्व व्यापार--इसके द्वारा साधारणीकृत भाव आस्वाद्य अर्थात् आनन्द के योग्य हो जाता है। इसके अलावा दर्शक-पाठक इस व्यापार द्वारा रजस्-तमस् से रहित होकर सत्त्वगुण प्रधान हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें प्रत्येक भाव की

३७. वही पृ. ४४९

४०. वही.

३८. वही, ४५.

४१. अ. भा. अध्याय-६.

३९. वही.

को प्राप्त होते हैं।^{३३} भरतमुनि के सूत्र के चार व्याख्याकार प्रसिद्ध हैं - जो निम्न प्रकार से हैं

भट्टलोल्लट :-

भट्टलोल्लट भरतसूत्र के प्रथम व्याख्याता माने जाते हैं इनका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, परन्तु आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में उनके मत की व्याख्या की है। जिसके अनुसार इनका सिद्धान्त "उत्पत्तिवाद" के नाम से जाना जाता है। इनके मतानुसार "रस" दुष्यन्त आदि पात्रों में ही रहता है, क्योंकि नट मूल पात्रों के भावों का अनुकरण वाणी, वेशभूषा आदि क्रियाओं से करते हैं। मूलरूप से रस की उत्पत्ति राम आदि में होती है। दर्शक उनकी अभिनय कुशलता से चमत्कृत रस का अनुभव करते हैं। इनके अनुसार संयोगात् का अर्थ है- "उत्पत्ति"।^{३४} ये आलम्बन विभाव रामादि को "कारण" और रस को "कार्य" मानकर रसनिष्पत्ति प्रक्रिया का विश्लेषण कार्य-कारण सम्बन्ध को आधार बनाकर कहते हैं। परन्तु इनके बाद के आचार्यों ने इनके उत्पत्तिवाद का खण्डन निम्नतया किया है- किन्तु यह मत स्वीकृत

नहीं किया गया इसमें यह दोष पाया गया कि साधारण से साधारण दर्शक भी अभिनेता की अभिनय कुशलता से आनन्दित होकर रस का अनुभव करता है। फिर यदि रस की उत्पत्ति मूलपात्र राम आदि के अन्दर होती है, तो दर्शक को उसकी अनुभूति कैसे हो सकती है।^{३५} इस प्रकार आचार्य भट्टलोल्लट का "उत्पत्तिवाद" खण्डित हो जाता है। सूत्र की द्वितीय व्याख्या इस प्रकार है-

आचार्य शंकुक- सूत्र के द्वितीय व्याख्याकार शंकुक हैं उनका मत "अनुमितिवाद" है। इनके मत में अभिनेता कृत्रिम रूप से अनुभावादि का प्रकाशन करता है। इन कृत्रिम अनुभावों को देखकर वास्तविक रूप में विद्यमान न होने पर भी उसमें "रस" का अनुमान करता है तथा दर्शक अभिनय में कुशल अभिनेता को ही राम मानते हैं साधारण रूप से यह अनुभूति सम्यक्, मिथ्या, संशय और सादृश्य इन चार अनुभूतियों से विलक्षण होती है। इनके अनुसार "चित्रतुरगन्याय" अर्थात् चित्र में स्थित घोड़े को देखकर उनके कृत्रिम होने पर भी वास्तविक समझना; से दर्शक अभिनेता को ही विभाव मान लेते हैं।^{३६} इस सिद्धान्त के अनुसार दर्शक अभिनेता में

३४. अभिनव भारती, अध्याय-६.

३६. आ. भा. अध्याय-७.

३५. अ. भारती अध्याय-६/३१

नामोल्लेख किया है।^{५०} आचार्य धनंजय काव्य में नौ एवं नाटक में आठ रसों को ही मानने के पक्ष में प्रतीत होते हैं।^{५१} आचार्य अभिनवगुप्त ने काव्य एवं नाट्य दोनों में ही शान्त रस की प्रतिष्ठा की है।^{५२} डॉ. राघवन का मत है कि भोज के विचारानुसार स्थायी, संचारी, एवं सात्त्विक सभी भाव रस दशा को प्राप्त हो सकते हैं।^{५३} इस प्रकार उन्होंने तो रस संख्या को चरम सीमा तक ही पहुँचा दिया। कविराज विश्वनाथ ने वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा का प्रयत्न करते हुए रसों के दस भेद स्वीकार किए।^{५४}

रससंख्या के विवेचन में विचित्र बात यह है कि जहाँ एक ओर रससंख्या विस्तार के प्रयत्न हुए, वहाँ दूसरी ओर सभी रसों का एक रस में समाहार करने का प्रयत्न किया गया। इस सन्दर्भ में

भवभूति, अभिनवगुप्त, नारायण पंडित एवं वैष्णव भक्तों के नाम लिए जा सकते हैं। इन्होंने क्रमशः- करुण, शान्त, शृंगार, अद्भुत, तथा भक्ति रस में अन्य सभी रसों का समाहार करने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः रस संख्या का प्रश्न प्रारम्भ से ही विवाद का विषय रहा है। यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भावों की अनन्तता के अनुसार रसों की अनन्तता मानी जा सकती है और नवीन विषय-वस्तु के अनुसार नवीन रसों की कल्पना की जा सकती है, रस संख्या बढ़ाई जा सकती है, तथापि रसों की संख्या उतनी ही मानी जानी चाहिए जितने कि सर्वस्वीकृत स्थायी भाव हैं। सुनिश्चित रूप से स्थायीभाव नौ हैं। अतः रस भी नौ ही माने जाने चाहिए।

शोध छात्रा, ललित कला विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

५०. काव्यालंकारसंग्रह, ४/४.

५१. दशरूपक, ४/३५.

५४. Dr. V. Raghavan, The Number of Rasas.

५१. वही, १२/३.

५३. हिन्दी अभिनवभारती.

अनुभूति आनन्दमय होती है।^{४२}

इनके अनुसार “संयोगात्” का अर्थ “भोज्य-भोजक सम्बन्ध” तथा “निष्पत्ति” का अर्थ “भुक्ति” है। इन्होंने स्वयं कहा है कि रस न तो प्रतीत होता है, न उत्पन्न होता है और न ही अभिव्यक्त होता है^{४३} वह तो भुक्त होता है। इनके मत का खण्डन आचार्य अभिनवगुप्त ने इस प्रकार किया है-

आचार्य भट्टनायक के मत पर आचार्य अभिनवगुप्त को आपत्ति है कि उन्होंने जो अभिधा-भावकत्व और भोजकत्व तीन व्यापार माने हैं, इनकी शास्त्रीय प्रामाणिकता सन्देहास्पद है।^{४४} आचार्य अभिनवगुप्त ने इन सभी कार्यों की पूर्ति व्यंजना व्यापार (शक्ति) से मानी और वह शास्त्र के अनुसार भी है।^{४५}

आचार्य अभिनवगुप्त

आचार्य अभिनवगुप्त भरतमुनि सूत्र के चतुर्थ तथा सर्वमान्य आचार्य हैं इनके मतानुसार रति आदि स्थायीभावों को सामाजिक दर्शन के हृदय में बीजरूप में निहित मानते हैं अतः जब सुन्दर अभिनय

होता है तब दर्शक के हृदय में स्थित वे सुप्त भाव जाग्रत होकर अभिव्यक्त हो जाते हैं तथा रस की निष्पत्ति का कारण बनते हैं। इन्होंने “संयोगात्” का अर्थ अभिव्यङ्ग्य-अभिव्यञ्जक सम्बन्ध तथा “निष्पत्ति” का अर्थ अभिव्यक्ति किया है। इसी के साथ उन्होंने भट्टनायक के तीनों व्यापारों को व्यंजना व्यापार में समाहित कर लिया। विद्वानों में आचार्य अभिनवगुप्त का ही मत सर्वमान्य है।^{४६}

रस संख्या

भरतमुनि ने “नाट्यशास्त्र” में आठ रसों - शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत का उल्लेख किया है।^{४७} यह संख्या उन्हें परम्परा से प्राप्त हुई थी और इस सम्बन्ध में भरत ने आचार्य द्रुहिण का नाम आदर के साथ लिया है।^{४८} आचार्य उद्भट ने इस सूची में शान्त रस को भी सम्मिलित कर लिया और इस प्रकार रस संख्या नौ हो गयी।^{४९} इनके पश्चात् रुद्रट ने “प्रेयान” नामक एक नवीन रस का

४२. अ. भा. अध्याय-६.

४३. वही.

४४. वही.

४५. वही. ६. ३१.

४६. वही.

४७. (क) वही.

(ख) आचार्य पंडितराज जगन्नाथ, रसगङ्गाधर प्रस्तावना पृ. 28.

४८. ना. शा. ६/१६.

४९. ना. शा. ६/१६.

प्रधानता ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु आदि ज्योति पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण एवं ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाशुभ फलों का कथन किया जाता है। कतिपय मनीषियों का अभिमत है कि नभोमण्डल में स्थित ज्योतिः सम्बन्धी विविध विषयक विद्या को ज्योतिर्विद्या कहते हैं, जिस शास्त्र में इस विद्या का सांगोपांग वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र कहलाता है।^५

पूर्व सूर्यादि नवग्रह आकाशमण्डल में विद्यमान हैं। जिनकी गतिवश गमन करने नक्षत्र एवं राशि संचरण द्वारा फल का निरूपण किया जाता है। प्रत्येक वस्तु पर इनके गुण अथवा अवगुणों के प्रभाव पड़ने के कारण ही पदार्थों का स्वरूप बदलना, नष्ट अथवा उत्पन्न आदि होने का प्रभाव दिखाई पड़ता है और जो घटनाएं घटती हैं, प्राकृतिक प्रकोप आदि भी इनके प्रभाववश फल घटित करते हैं। सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ये नौ ग्रह हैं। इनमें राहु एवं केतु छायाग्रह हैं। कतिपय विद्वान् इन्हें स्वतन्त्र ग्रह नहीं मानते।

ग्रह समिति में सूर्य एवं चन्द्र राजा,

बुध राजकुमार, मंगल सेनापति, शुक्र एवं गुरु मन्त्री एवं शनि भृत्य हैं।^६ दिशावश सूर्य पूर्व का, अग्नि-कोण-शुक्र, दक्षिण-मंगल, नैऋत्य-राहु, पश्चिम-शनि, वायव्य-चंद्र, उत्तर-बुध एवं ईशान का स्वामी बृहस्पति होता है।^७ गुरु, बुध, शुक्र यह शुभ ग्रह हैं। शनि, मंगल एवं सूर्य पापग्रह हैं। यदि बुध पापग्रह के साथ हो तो वह भी पाप ग्रह होता है। क्षीण चंद्र भी पापी है किन्तु पूर्ण चंद्र शुभ होता है।

सूर्य तांबे के समान, चंद्र का श्वेत, भौम का लाल, बुध का हरा, गुरु का पीला, शुक्र का अनेक रंग, शनि काला वर्ण है। सूर्य के अग्नि, चंद्र के जल, भौम का कार्तिकेय, बुध के विष्णु, गुरु का इन्द्र, शुक्र का इन्द्राणी और शनि का ब्रह्मा अधिदेव हैं।^८ चंद्र-शुक्र स्त्रियों के, बुध-शनि नपुंसकों के, गुरु, सूर्य, भौम पुरुषों के अधिपति हैं।^९ गुरु, शुक्र ब्राह्मणों के, सूर्य, मंगल क्षत्रियों के, चन्द्रमा वैश्यों के, शनि संकर जाति के, बुध शूद्रों के स्वामी हैं।^{१०} अग्नितत्व का मंगल, भूमि का बुध, आकाश का गुरु, जल का शुक्र, वायुतत्व का शनि मालिक है।^{११}

५. भद्रबाहुसंहिता, अ. १, पृ. १४.

७. बृहज्जातक, अ. २, पृ. ४२.

९. सारावली, अ. ४, ८, ९, १२.

११. लघुजातक, अ. २, ६.

६. लघुजातक, अ. २, श्लो. १, २, ३, पृ. १८.

८. नारदपु. त्रि. ज्यो. जातक स्कन्ध, पृ. २८२.

१०. नारदपुराण, त्रि. स्कं. ज्यो. जा. स्कं, पृ. २८२.

१२. सारावली, अ. ४, १५, १६.

ज्योतिषशास्त्र के संदर्भ में ग्रह-नक्षत्र विचार

—श्री जीवे कुमार

मानव-जीवन के उद्देश्य अथवा लक्ष्य की सिद्धि के लिए वेद में प्रतिपादित धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का प्रतिपादन किया गया है अर्थात् लौकिक और पारलौकिक सभी कार्य वेदों में कहे हुए धर्म के अधीन हैं, क्योंकि 'वेद एव सर्वस्वम्' हिन्दुओं का वेद ही सब कुछ है। 'वेद्यन्ते ज्ञायन्ते धर्मार्थकाममोक्षा अनेनेति वेदः' अर्थात् धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष यह सब इस वेद से ही जाने जाते हैं।^१ सभी में वेद ही प्रमुख है। वेद को सनातन धर्म में वेदपुरुष कहा गया है।^२ वेद-पुरुष के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष एवं छन्द यह छः अङ्ग हैं, जैसे भास्कराचार्य जी लिखते हैं:-

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी
श्रोत्रमुक्तं निरुक्तञ्च कल्पः करौ ।
यातु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका
पादपद्मद्वयं छन्दाघैर्बुधैः ॥

ज्योतिष के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति अपने इष्ट-पदार्थ की प्राप्ति करने में असमर्थ होता है और अन्धकार में इष्टपदार्थ का ज्ञान दीपक की सहायता से ही संभव होता है उसी प्रकार जीवन में आने वाले शुभाशुभ समय का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र से होता है।^३

अतः वेद के छः अङ्गों में भी ज्योतिष- शास्त्र वेदपुरुष का नेत्र होने के कारण वेदपुरुष का मुख्य अङ्ग है। वशिष्ठ जी भी इसी विषय में लिखते हैं कि- वेद मन्त्रों में यज्ञों का समय पर करना उचित है क्योंकि यज्ञ समय के अधीन हैं और इस ज्योतिषशास्त्र से काल का ज्ञान होता है। अतः यह ज्योतिष-शास्त्र वेद का अङ्ग है यह प्रसिद्ध है।^४

सूर्यादि ग्रहों के गमन, संचार आदि के द्वारा फल का निरूपण किया जाता है। इसमें

१. सूर्यसिद्धान्त, भूमिका, पृ. ९, श्लो. ९.

३. लघुजातक, अ. ९, श्लो. ३.

२. जातकालंकार, पुरोवाक्

४. सूर्यसिद्धान्त, भूमिका, पृ. १, श्लो. २

वाला, काले घुँघराले केशयुक्त, सुखी, सुन्दर, देखने योग्य, कफ-वायु प्रकृति, मधुरभाषी तथा अधिक वीर्ययुक्त होता है।^{१९}

शनि-दुबला^{२०} और लम्बा शरीर, कपिल नेत्र, काला, परनिन्दक, आलसी, वात प्रकृति, मोटे-मोटे नख तथा दाँत वाला, अधिक रोमयुक्त तथा स्नायुसार है।^{२१}

नक्षत्र विचार

ज्योतिष शास्त्र में विशेषकर फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसे शरीर में स्थूल एवं सूक्ष्म नाड़ियाँ शरीर को जीवित रखने एवं संचालन में सहायक हैं, उसी प्रकार बिना नक्षत्र ज्ञान के ज्योतिषशास्त्र एवं मुहूर्त-योगादि शास्त्र भी अधूरा है। नक्षत्र २७ हैं, जैसे अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त। चूँकि नक्षत्र २७ ही हैं, किन्तु उत्तराषाढा की अन्तिम १५ घटी एवं श्रवण नक्षत्र के मान के पंद्रहवें विभाग अर्थात् श्रवण की प्रारम्भ की आदि ४ घटियाँ अभिजित कहलाती हैं।^{२२} मुख्य २७ नक्षत्रों से ही २८ नक्षत्र कहे जाने लगे हैं, अभिजित^{२३} नाम का स्वतन्त्र नक्षत्र नहीं है। प्रत्येक नक्षत्र के चार-चार चरण होते हैं। इस प्रकार उषा के अन्तिम दो पाद एवं श्रवण के

प्रारम्भ के दो चरणों को मिलाकर श्रवण बनता है।^{२४}

नक्षत्र स्वरूप के विषय में अर्वाचीन विज्ञानवेत्ताओं ने “दूरवीक्षण” यन्त्र के द्वारा विभिन्न नक्षत्रों का अवलोकन करके भारतीय आचार्यों द्वारा नक्षत्रों के पूर्व स्थापित नामों को उनकी ताराओं के संयोगवश बनने वाली आकृतियों के अनुरूप ही पाया है।

नक्षत्र के स्वामी के नाम से नक्षत्र का बोध होता है। जैसे अश्विनी नक्षत्र के स्वामी अश्विनीकुमार, भरणी का यम, कृत्तिका का अग्नि, रोहिणी का ब्रह्मा, मृगशिरा का शशि, आर्द्रा का रुद्र, पुनर्वसु का देवमाता, पुष्य का बृहस्पति, आश्लेषा का सर्प, मघा के पितर देवता, पू. फा. का भग (सूर्य विशेष), उ. फा. का अर्यमा (सूर्य विशेष), विशाखा के शुक्र एवं अग्नि दो देवता होने से विशाखा का नाम द्वीप भी है। अनुराधा का मित्र (सूर्य विशेष), ज्येष्ठा का इन्द्र, मूला का निर्ऋति (राक्षस), पू. षा. का क्षीर (जल), उ. षा. के विश्वेदेव, अभिजित का ब्रह्मा, श्रवण का गोविन्द, धनिष्ठा का वसु।

अर्थात् अष्टवसु, शतभिषा का तोयप

१९. सारावली, अ. ४, श्लो. २७, पृ. २१.

२१. सूर्यसिद्धान्त, पृ. २१.

२३. मुहूर्तपारिजात, परिचय प्रकाण्ड, पृ. २१.

२०. बृहज्जातक, अ. २, श्लो. २८, पृ. ४६.

२२. नारदपुराण, पृ. ३२९.

२४. मुहूर्तपारिजात, पृ. २५.

सूर्य कड़वे, चंद्र क्षार, भौम तिक्त, बुध मिश्रित, गुरु मधुर, शुक्र खट्टा, शनि कसैला रस का मालिक है। देवालय, जलाशय, अग्नि-स्थान, क्रीड़ास्थल, कोश, शयन, कतवारखाना ये सूर्यादि ७ ग्रहों के क्रम से स्थान हैं। सूर्य का वस्त्र मोटा, चंद्र नया, भौम जला हुआ, बुध भीगा हुआ, गुरु का न पुराना न नया, शुक्र का मजबूत, शनि सुजीर्ण अत्यन्त फटा पुराना।^{१३} सूर्य का तांबा, चंद्र मणि, भौम सुवर्ण, बुध मिश्रित, गुरु चांदी, शुक्र का मोती, शनि का लोह। बृहत्पराशर इसके विपरीत हैं—
गुरोः पीताम्बरं विप्र! भृगोः क्षौमंतथैव च....^{१४}

अयन के सूर्य, मुहूर्त का चंद्र, दिनरात्र का भौम, ऋतु का बुध, मास का गुरु, पक्ष का शुक्र, वर्ष का शनि स्वामी होता है। शिशिर ऋतु का स्वामी शनि, वसन्त-शुक्र, ग्रीष्म-भौम, वर्षा का चंद्र, शरत् का बुध और हेमन्त का अधिपति गुरु होता है।^{१५}

ऋग्वेद का बृहस्पति, यजुर्वेद का शुक्र, सामवेद का भौम, अथर्ववेद का अधिपति बुध है। देवलोक का गुरु, मनुष्य लोक के चन्द्र व शुक्र, पितृलोक के सूर्य एवं भौम एवं पशु-पक्षी व नरलोक निवासियों के स्वामी बुध एवं

शनि हैं।^{१६}

सूर्य चतुरस्र आकार, कुछ ऊँचे शरीरवाला, परन्तु अति ऊँचा नहीं, थोड़े केश, पित्ताधिक, दृढ़ अस्थि, शूरवीर मधु सदृश पिंगल दृष्टि, लाल और कृष्ण वर्ण से युक्त तथा स्थूल शरीरवाला है।^{१७}

चंद्र निर्मल कान्ति, बुद्धिमान्, गौरवर्ण, चपल, कफ-वात प्रकृति, अधिक रक्त, मृदुभाषी, दयालु, मित्रों पर प्रीति वाला, कृश तथा गोल आकृति तथा उन्नत शरीरधारी है।

मंगल-हिंसायुक्त, लघु शरीर, तरुण, पिंगल नेत्र पित्त प्रकृति, दुराचारी, चंचल, लाल तथा गौरवर्ण एवं अधिक मज्जावाला है।

बुध-साधारण रूप वाला, मृदुवक्ता, दूर्वादल के समान श्यामल गात, विस्तृत स्नायु, चतुर, स्थूल चर्म वाला, वात-पित्त-कफ प्रकृति, सर्वदा आनन्दित रहने वाला और चन्द्र पुत्र है।

बृहस्पति-पिङ्गल वर्ण दृष्टिवाला, बुद्धिमान्, पुष्ट मांसवाला, कफ प्रकृति, गौरवर्ण, पिङ्गल वर्ण के बालों वाला, अधिक मेदा से युक्त तथा दीर्घ शरीरवाला है।^{१८}

शुक्र-श्यामवर्ण, विरल शरीर सन्धि

१३. बृहज्जातक, अ. २.

१५. सारावली, अ. ४, श्लो. १७.

१७. बृहज्जातक, अ. २, श्लो. ८, पृ. ४४.

१४. बृहत्पराशर, अ. ३, ४३-४४.

१६. वही, अ. ४, श्लो. १७.

१८. लघुजातक, अ. ४, श्लो. १, २, ३, ४, ५, पृ. ३०.

ध्रुवादि संज्ञक नक्षत्र फल:-

ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में बीज वपन करना, गृह निर्माण करना, विनायक पूजन एवं शान्ति, वाटिका आदि निर्माणों के साथ मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में बताए कार्य भी होते हैं। क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र में वस्तुओं का विक्रय, स्त्री के साथ संभोग कर्म, शास्त्राध्ययन, आभूषण पहनना, साहित्य-संगीत कला विषयक कार्य एवं औषधादान-प्रदान करने चाहिए। साधारण (मिश्र) संज्ञक नक्षत्र में अग्नि होता, काम्य वृषोत्सर्ग तथा उग्रसंज्ञक नक्षत्र कार्य भी सिद्ध होते हैं।^{२९} चरसंज्ञक- इसमें हाथी, घोड़े आदि सवारी पर चढ़ना, बाग-उद्यान आदि यात्रा आदि पर से

लघुसंज्ञक नक्षत्रों में कहे कार्य भी सिद्ध होते हैं। मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में-संगीत, वस्त्र, परिधान, स्त्री स्मरण संभोगादि क्रिया, अपने मित्र के कार्य एवं आभूषण धारण कार्य सिद्ध होते हैं।

उग्रसंज्ञक नक्षत्रों में घात (मारण) अग्निदाह, खलता, विष भक्षण आदि कार्य सिद्ध होते हैं तथा दारुण संज्ञक नक्षत्रों के कार्य भी इसमें सिद्ध होते हैं।^{३०} तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्रों में उग्र, भयंकर कर्म, मारणादि अत्यन्त पाप कर्म, मित्रों में भेद पैदा कर देना, पशु हाथी, घोड़े, बैल आदिकों की शिक्षा तथा आदि शब्द से दारुण बन्धन दहन, प्रहरण कर्म भी सिद्ध होते हैं।^{३१}

संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

२९. मुहूर्त चिन्तामणि, श्लो. ५, पृ. ७५.

३१. मुहूर्त चिन्तामणि, श्लो. ८, पृ. ७९.

३०. मुहूर्त पारिजात, परिचय प्रकाण्ड, पृ. २३.

अर्थात् वरुण, पू. भा. का अजचरण (सूर्य विशेष), उ. भा. का अहिर्बुध्न्य और रेवती के पू. षा. (सूर्य विशेष) देवता होते हैं।^{१५}

प्रत्येक नक्षत्र के चार चरण और २७ नक्षत्रों में गुणित करने पर १०८ कुल चरण होते हैं। इन्हीं चरणों में ग्रह चारवश आने पर शुभ अथवा अशुभ फल घटित करते हैं।

नक्षत्रों के मुख:-

पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल- यह नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुख किए हुए) हैं। इनमें बिल प्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदि में जाना), गणित, भूत साधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धन को निकालना आदि सभी कार्य सिद्ध होते हैं। अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती-यह नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं। इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदि की सवारी करना, गधे, बैल आदि से चलने वाले रथ बनाना, नौका पर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि सम्बन्धित कार्य करने

चाहिए।^{१६}

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, घनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा तथा उत्तरा भाद्रपद-यह नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख अर्थात् (ऊपर मुखवाले) कहे गए हैं। इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल अर्थात् विवाह इत्यादि कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं।^{१७}

नक्षत्रों की ध्रुवादि संज्ञा:-

रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तर भाद्रपदा-यह ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र हैं।^{१८} हस्त, अश्विनी और पुष्य-यह क्षिप्रसंज्ञक, विशाखा और कृत्तिका-यह दोनों साधारण संज्ञक हैं। घनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण यह चरसंज्ञक, मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती मृदुसंज्ञक, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद और भरणी-उग्रसंज्ञक, मूल आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा तीक्ष्ण नामक नक्षत्र हैं जो सभी अपने नाम के अनुसार ही फल देते हैं। अतः इनके नामानुरूप ही कार्य सम्पादित करने चाहिए।

१५. मुहूर्त चिन्तामणि, पृ. ७३.

१७. नारदपुराण, पृ. ३३०.

१८. मुहूर्त पारिजात, परिचय प्रकाण्ड, पृ. २२.

१६. नारदपुराण, पृ. ३२९.

शोक समाचार-

अत्यन्त दुःख का विषय है कि संस्थान के प्रैस मैनेजर श्री राकेश कुमार की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रकान्ता शर्मा का ४-८-२०१७ को कुछ समय की बीमारी के बाद बहुत छोटी आयु में निधन हो गया। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से श्री राकेश कुमार तथा समस्त दुःखी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना एवं सहानुभूति है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह इस परिवार को इस असहनीय दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे तथा दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में शरण देकर शान्ति प्रदान करे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

==== विविध-समाचार =====

५१ कुण्डों में यज्ञपूर्णाहुति

आत्मशुद्धि आश्रम बहादुरगढ़, हरियाणा का स्वर्णजयन्ती महोत्सव, शुक्रवार १ सितम्बर से सोमवार २ अक्टूबर तक पूज्य स्वामी धर्ममुनि जी, मुख्य अधिष्ठाता, आत्मशुद्धि आश्रम बहादुरगढ़ के सान्निध्य में मनाया जा रहा है। जिसमें ५१ कुण्डों में यज्ञ पूर्णाहुति दी जायेगी। इस अवसर पर प्रभावशाली दीक्षा समारोह आयोजित किया जायेगा। इस अवसर पर प्रकाशित की जाने वाली स्मारिका के लिए लेख और विज्ञापन भी आमन्त्रित हैं। इस समारोह में सपरिवार सभी आमन्त्रित हैं।

निवेदक

आत्मशुद्धि आश्रम बहादुरगढ़,
जिला झज्जर (हरियाणा) पिन १२४५०७

== संस्थान-समाचार ==

दान -

श्रीमती गुरशान्ति नाथ	४०००/-	श्री आदित्य सेठी	१०,०००/-
राजदूत मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली।		सुपुत्र श्री अरुण सेठी	
लै० क० बी.बी मनोचा	५०००/-	१६/५२, पंजाबी बाग,	
सी-७९, एन डी एस ई. २,		नई दिल्ली।	
नई दिल्ली।		श्री अरुण सेठी	१०,०००/-
श्रीमती इन्दू शर्मा	२०,०००/-	सुपुत्र स्व. श्री भारतभूषण सेठी	
२३-ए, गणेश नगर,		१६/५२, पंजाबी बाग,	
बस्ती नौ, जालन्धर।		नई दिल्ली।	

हवन-यज्ञ-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। अगस्त २०१७ के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

बधाई-

संस्थान के शुभचिन्तक श्री जगदीश प्रसाद नौटियाल, भाषा शिक्षक, डी.ए.वी. स्कूल, होशियारपुर को पंजाब सरकार की ओर से एक अच्छे अध्यापक होने के नाते प्रशस्तिपत्र १५ अगस्त को प्रदान किया गया तथा वे लम्बे समय तक किए गए अध्यापन-कार्य से भी ३१ अगस्त को सेवामुक्त हो रहे हैं। इसके लिए उन्हें संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई तथा शुभकामनाएं।

विश्वज्योति

४५

न केवलं दानपरा जयन्ति,
भूलोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकम्,
सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥

मत्स्यपु., २२४.८

दान देने वाले व्यक्ति केवलमात्र सांसारिक प्राणियों को अपने वश में ही नहीं कर लेते अपितु अत्यन्त दुर्जेय इन्द्र के उस लोक को भी प्राप्त कर लेते हैं जिसमें देवता रहा करते हैं अर्थात् दानियों के लिए कोई भी स्थान अप्राप्य नहीं है ।



अपने पूज्य दादा

स्व. श्री भारत भूषण सेठी जी

(२४.७.१९) से (२९.७.९७)

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

अरुण सेठी, सन्तोष सेठी, आदित्य सेठी,

अलका रमन, अंजना अरुण, सीमा अतुल, रक्षित अंकित,

आदित्य अभिनव, अंकुर स्तुति

१६/५२, पंजाबी बाग, नई दिल्ली ।

दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् ।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे धियते सदा ॥

मत्स्यपु., २२४.७

संसार में दान ही पुरुषों का श्रेय करने वाला है, दान ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है, दान देने वाले व्यक्ति की लोक में पुत्र के समान प्रतिष्ठा होती है। अतः दान सबसे श्रेष्ठ तथा प्रिय कर्म है।



स्व. श्री आर. एल. लाम्बा

१२.१२.२००८
(पिता जी)



स्व. श्रीमती रामरखी लाम्बा

६.९.२००९
(माता जी)

की
पावन स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

डॉ. मंगतराम लाम्बा एवं वन्दना लाम्बा

लाम्बा सदन,
धर्मपुर (जिला सोलन), हि. प्र.



(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होशियारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होशियारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होशियारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०८-२०१७ को प्रकाशित।